श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ जयतः

उज्ज्वलनीलमणि–किरण

श्रीश्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर विरचित

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एवं तदन्तर्गत भारतव्यापी
श्रीगौड़ीय मठोंके प्रतिष्ठाता, श्रीकृष्णचैतन्याम्नाय
दशमाधस्तनवर श्रीगौड़ीयाचार्य केशरी
ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्री

श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामीचरणके

अनुग्रहीत

त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

द्वारा अनूदित एवं सम्पादित

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

गौड़ीय वेदान्त प्रकाशन

प्रकाशकः

श्रीभक्तिवेदान्त माधव महाराज

द्वितीय संस्करणः

श्रीजगन्नाथदेवकी रथ यात्रा, गौराब्द ५१९

प्राप्तिस्थान

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ,
मथुरा (उ॰ प्र॰)
✆ २५०२३३४

श्रीरूप-सनातन गौड़ीयमठ,
दानगली, वृन्दावन (उ॰प्र॰)
✆ २४४३२ ७०

श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठ, दसविसा,
राधाकुण्ड रोड, गोवर्धन (उ. प्र)
✆ २८१५६६८

श्रीरमणबिहारी गौड़ीय मठ,
बी-३, जनकपुरी, नई दिल्ली,
✆ २५५३३५६८

श्रीखण्डेलवाल एण्ड संस,
अठखम्बा बाजार, वृन्दावन
✆ २४४३९०९

प्रस्तावना

श्रीगौड़ीय-वैष्णवाचार्य मुकुटमणि महामहोपाध्याय परमाराध्यतम परमपूज्यपाद श्रीलविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर महोदय इस ग्रन्थके रचयिता हैं। इस ग्रन्थमें श्रीचैतन्यमहाप्रभुके मनोऽभीष्ट संस्थापक परमप्रिय पार्षद श्रीश्रीलरूप गोस्वामीके रचित अखिल-रसामृतमूर्ति व्रजराज श्रीनन्दनन्दनके उज्ज्वल रसके परम विज्ञानमय श्रीउज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थका सार-निर्यास अत्यन्त सरल-सहज और बोधगम्य संस्कृत भाषामें गागरमें सागरकी भाँति सन्निहित है।

इस ग्रन्थमें उज्ज्वल रसके विषयालम्बन नायक-चूड़ामणि श्रीकृष्ण, आश्रयालम्बन नायिकाओं, उनका स्वभाव, दूतियोंका परिचय, पञ्चविध सखियाँ, वयकाल, उद्दीपनविभाव, अनुभावसमूह, सात्त्विकभावसमूह, भावोत्पत्ति, स्थायीभाव—**मधुरारति** उनका आश्रय, शृंगार रसके अन्तर्गत संयोग व विप्रलम्भ आदिका संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

श्रीलविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरका जीवन-चरित्र

श्रीलविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर नदिया जिलेमें राढ़ीय श्रेणी विप्रकुलमें आविर्भूत हुए थे। ये हरिवल्लभके नामसे प्रसिद्ध थे। रामभद्र और रघुनाथ नामक इनके दो बड़े भाई थे। बाल्यकालमें इन्होंने देवग्राम-नामक एक ग्राममें व्याकरण पाठ

समाप्त कर मुर्शिदाबाद जिलेके शैयदाबाद नामक ग्राम (गुरुगृह) में भक्ति-शास्त्र अध्ययन किया। इन्होंने बिन्दु-किरण-कणा इन तीनों ग्रन्थोंकी रचना इस शैयदाबाद ग्राममें अध्ययन करते समय ही की थी। कुछ दिनों बाद वे गृहत्याग कर वृन्दावन चले आये। यहीं पर उन्होंने विभिन्न ग्रन्थोंकी रचनाएँ व टीकाएँ लिखीं।

श्रीमन्महाप्रभु तथा व्रजवासियोंके अप्रकट होने पर शुद्धभक्ति-धारा श्रीनिवासाचार्य, नरोत्तमठाकुर और श्यामानन्द—तीनों प्रभुओंके माध्यमसे प्रवाहित हो रही थी। श्रीलनरोत्तम ठाकुरकी शिष्य परम्परामें श्रीलविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर चतुर्थ-पुरुष हैं। श्रील नरोत्तम ठाकुर महाशयके शिष्यका नाम श्रीगंगानारायण चक्रवर्ती महाशय था। ये मुर्शिदाबाद जिलेके अन्तर्गत बालूचर गम्भिलामें रहते थे। इनका कोई पुत्र न था, केवलमात्र एक कन्या थी, जिसका नाम विष्णुप्रिया था। श्रीलनरोत्तम ठाकुरके एक वारेन्द्र श्रेणीके दूसरे शिष्य भी थे, जिनका नाम रामकृष्ण भट्टाचार्य था। इन रामकृष्ण भट्टाचार्यके कनिष्ठ पुत्रका नाम कृष्णचरण था। इन कृष्णचरणको श्रीगंगानारायणने दत्तकपुत्रके रूपमें ग्रहण किया। श्रीकृष्णचरणके शिष्य राधारमण चक्रवर्ती थे और ये श्रीराधारमण ही विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरके श्रीगुरुदेव हैं। रासपञ्चाध्यायकी सारार्थ-दर्शिनी टीकाके प्रारम्भमें इन्होंने ऐसा लिखा है—

श्रीरामकृष्णगंगाचरणान् नत्वा गुरुनुरुप्रेम्नः।
श्रीलनरोत्तमनाथ श्रीगौरांगप्रभुं नौमि॥

अर्थात् इस श्लोकमें श्रीरामसे उनके गुरुदेव श्रीराधारमण, कृष्णसे परमगुरुदेव श्रीकृष्णचरण, गंगाचरणसे परात्पर गुरुदेव

श्रीगंगाचरण, नरोत्तमसे परमपरात्पर गुरुदेव श्रीनरोत्तम ठाकुर और नाथ शब्दसे श्रीलनरोत्तम ठाकुरके गुरुदेव श्रीलोकनाथ गोस्वामीको समझना चाहिए। इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु तक अपनी गुरुपरम्पराको प्रणाम कर रहे हैं, ऐसा सूचित होता है।

श्रीनिवासाचार्यकी कन्याका नाम हेमलता ठाकुरानी था, ये परमविदुषी एवं परम-वैष्णवी महिला-भक्त थीं। इन्होंने अपने रूप कविराज नामक एक उदासीन शिष्यको गौड़ीय-समाजसे बहिष्कृत कर दिया था। तबसे वे रूपकविराज गौड़ीय-वैष्णव-समाजमें 'अतिबाड़ी' नामसे परिचित हुए। इन्होंने गौड़ीय-वैष्णवोंके सिद्धान्तके विरुद्ध अपना एक नया मत स्थापन किया कि केवलमात्र त्यागी व्यक्ति ही आचार्यका कार्य कर सकता है। गृहस्थ व्यक्ति भक्तिका आचार्य नहीं हो सकता। विधिमार्गका सम्पूर्ण रूपसे अनादर कर उच्छृंखलतापूर्ण रागमार्गका प्रचार करना ही इनका उद्देश्य था। श्रवणकीर्त्तनका त्यागकर केवल स्मरणके द्वारा ही रागानुगाभक्ति सम्भव है—ऐसा इनका नवीन मत था।

सौभाग्यवश श्रीलचक्रवर्ती ठाकुर उस समय वर्तमान थे। इन्होंने श्रीमद्भागवतके तृतीय स्कन्धकी सारार्थ-दर्शिनी टीकामें प्रतिवाद किया। आचार्यवंशमें नित्यानन्द प्रभुके पुत्र वीरभद्र प्रभुके शिष्यवंशमें तथा अद्वैताचार्यके त्यक्त पुत्रोंके वंशमें गृहस्थ होकर गोस्वामी उपाधि प्रदान और ग्रहण करना शिष्यके लिए उचित नहीं हैं—रूप कविराजके ऐसे विचारका श्रीचक्रवर्ती ठाकुरने प्रतिवाद किया था। उन्होंने आचार्यवंशके योग्य अधस्तन गृहस्थ सन्तानोंके पक्षमें भी आचार्यका कार्य करना असंगत नहीं है, ऐसा प्रमाणित किया था। परन्तु वंश-परम्परा

क्रमसे धन और शिष्यके लोभसे आचार्यकुलमें उत्पन्न अयोग्य सन्तानोंके लिए अपने नामके साथ गोस्वामी शब्दका प्रयोग शाश्वत-शास्त्र विरोधी और नितान्त अवैध कार्य है—ऐसा भी प्रमाणित किया। इसलिए इन्होंने आचार्यका कार्य करने पर भी अपने नामके साथ गोस्वामी शब्दका प्रयोग कदापि नहीं किया। उन्होंने आधुनिक कालके विचारहीन अयोग्य आचार्य सन्तानोंकी शिक्षाके लिए ही ऐसा किया है।

श्रीलविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर जिस समय अत्यन्त वृद्ध हो गये थे तथा अधिकांश समय वे अर्द्धबाह्य और अन्तर्दशामें स्थित होकर भजनमें विभोर रहते थे, उसी समय जयपुरमें श्रीगौड़ीय-वैष्णवों एवं स्वकीयावादी अन्यान्य वैष्णवोंमें एक विवाद छिड़ गया। उस समय द्वितीय जयसिंह जयपुरके नरेश थे। विरुद्ध पक्षवाले वैष्णवोंने द्वितीय जयसिंहको यह समझाया कि श्रीगोविन्ददेवके साथ श्रीमती राधिकाजीकी पूजा शास्त्र-सम्मत नहीं है। इसका कारण यह है कि श्रीमद्भागवत या विष्णुपुराणमें श्रीमती राधिकाके नाम का कहीं भी उल्लेख नहीं है। श्रीमती राधिका वैदिक विधियोंके अनुसार कृष्णकी विवाहित पत्नी नहीं हैं। दूसरी बात गौड़ीय-वैष्णव साम्प्रदायिक वैष्णव नहीं है। चार ही वैष्णव सम्प्रदाय हैं, जो अनादि कालसे चले आ रहे हैं। उनके नाम हैं—श्रीसम्प्रदाय, ब्रह्मसम्प्रदाय, रुद्रसम्प्रदाय और सनकसम्प्रदाय। कलियुगमें इन सम्प्रदायोंके प्रधान आचार्य क्रमशः श्रीरामानुज, श्रीमध्व, श्रीविष्णुस्वामी और निम्बादित्य हैं। गौड़ीय-वैष्णव इनसे बहिर्भूत होनेके कारण वे शुद्ध साम्प्रदायिक वैष्णव नहीं हैं। विशेषतः इस वैष्णव-सम्प्रदायमें अपना कोई ब्रह्मसूत्रका भाष्य नहीं है। इसे परम्परागत वैष्णव

सम्प्रदाय नहीं माना जा सकता है। उसी समय महाराज जयसिंहने श्रीवृन्दावनके प्रधान गौड़ीय-वैष्णवाचार्योंको श्रील रूपगोस्वामीके अनुगत जानकर श्रीरामानुजीय वैष्णवोंके साथ विचार करनेके लिए आह्वान किया। अत्यन्त वृद्ध एवं भजनानन्दमें विभोर रहनेके कारण श्रीचक्रवर्ती ठाकुरने अपने छात्र गौड़ीय-वैष्णव-वेदान्ताचार्य, पण्डितकुलमुकुट महामहोपाध्याय श्रीपाद बलदेव विद्याभूषण और अपने शिष्य श्रीकृष्णदेवको जयपुरमें विचार करनेके लिए भेजा। जाति-गोस्वामीगण अपने मध्व-सम्प्रदायके आनुगत्यको भूल चूके थे। साथ ही उन्होंने वैष्णव वेदान्तका अनादर और गौड़ीय वैष्णवोंके लिए एक महान विपत्तिका आह्वान किया था। श्रील बलदेव विद्याभूषणने अकाट्य युक्तियों और सुदृढ़ शास्त्रीय प्रमाणोंके द्वारा यह प्रमाणित किया कि गौड़ीय सम्प्रदाय मध्वानुगत शुद्ध वैष्णव-सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदायका नाम श्रीब्रह्म-मध्व-गौड़ीय-वैष्णव-सम्प्रदाय है। हमारे पूर्वाचार्य श्रील जीवगोस्वामी, कविकर्णपूर आदिने इसे स्वीकार किया है। श्रीगौड़ीय वैष्णवजन श्रीमद्भागवतको ही वेदान्तसूत्रका अकृत्रिम भाष्य मानते हैं। इसलिए गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायमें स्वतन्त्ररूपसे किसी वेदान्तसूत्रके भाष्यकी रचना नहीं की गयी है। विभिन्न पुराणोंमें श्रीमती राधिकाके नामका उल्लेख है, वे ह्लादिनी स्वरूपा कृष्णकी नित्यप्रिया हैं। श्रीमद्भागवतके विभिन्न स्थलोंमें विशेषतः दसवें स्कन्धके व्रजलीलाके वर्णन प्रसंगमें सर्वत्र ही श्रीमती राधिकाका अत्यन्त गूढ़रूपसे उल्लेख है। सिद्धान्तविद्, रसिक और भावुक भक्त ही इस गूढ़ रहस्यको समझ सकते हैं। उन्होंने उस विद्वत्सभामें प्रतिपक्षके सभी तर्कों एवं सन्देहोंको खण्ड-विखण्डकर श्रीगौड़ीय-वैष्णवोंका मध्वानुगत्य

एवं राधागोविन्दकी सेवापूजाकी स्थापना की। विपक्ष निरुतर हो गया, फिर भी उन्होंने श्रीगौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायका कोई वेदान्त भाष्य न होनेसे उन्हें शुद्ध पारम्परिक वैष्णव माननेसे अस्वीकार कर दिया। श्रीबलदेव विद्याभूषणने ब्रह्मसूत्रके 'श्रीगोविन्द भाष्य' नामक सुप्रसिद्ध गौड़ीय-भाष्यकी रचना की। अब पुनः श्रीगोविन्ददेवके मन्दिरमें श्रीराधागोविन्दकी सेवापूजा प्रारम्भ हुई तथा गौड़ीय वैष्णवोंकी श्रीब्रह्म-माध्व-गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायके रूपमें मान्यता स्वीकार की गयी। श्रीचक्रवर्ती ठाकुरकी सम्मति क्रमसे ही श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुने श्रीगोविन्दभाष्यकी रचना की तथा गौड़ीय-वैष्णवोंका श्रीमध्वानुगत्य प्रमाणित किया। इस विषयमें तनिक भी सन्देहका अवकाश नहीं है। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरका यह साम्प्रदायिक कार्य गौड़ीय वैष्णवोंके इतिहासमें स्वर्णाक्षरसे लिपिबद्ध रहेगा।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरजीने स्वरचित 'मन्त्रार्थदीपिका' में एक विशेष घटनाका वर्णन किया है—किसी समय उन्होंने श्रीचैतन्यचरितामृतका पठन-पाठन करते हुए कामगायत्रीके अर्थसे सम्बन्धित निम्नलिखित पयारों पर विचार किया—

काम-गायत्री मन्त्ररूप, हय कृष्णेर स्वरूप,
सार्द्धचब्बिश अक्षर तार हय।
से अक्षर चन्द्र हय कृष्णे करि उदय
त्रिजगत् कैल काममय॥

अर्थात् कामगायत्री श्रीकृष्णका स्वरूप है। इस मन्त्रराजमें साढ़े चौबीस अक्षर हैं, इस मन्त्रका प्रत्येक अक्षर पूर्ण चन्द्र

है। ये चन्द्रसमूह कृष्णको उदित कराकर त्रिजगतको प्रेममय बना देते हैं।

इन पद्योंके प्रमाणसे काम-गायत्रीमें साढ़े चौबीस अक्षर हैं, किन्तु श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती कामगायत्रीमें कौन-सा अर्द्धाक्षर है, बहुत चिन्ता करने पर भी न समझ सके। व्याकरण, पुराण, तन्त्र, नाट्य एवं अलङ्कार आदि शास्त्रोंमें विशेषरूपसे छनबीन करने पर भी उन्हें कहीं भी अर्द्धाक्षरका उल्लेख नहीं प्राप्त हुआ। उन सभी शास्त्रोंमें स्वर और व्यंजनके भेदसे उन्हें पचास अक्षरोंका ही उल्लेख मिला, किन्तु कहीं भी अर्द्धाक्षरका कोई प्रमाण न मिला। श्रील जीवगोस्वामी द्वारा रचित श्रीहरिनामामृत व्याकरणके संज्ञापादमें स्वर व्यंजनके प्रसंगमें पचास अक्षरोंका ही उल्लेख देखा। मातृकान्यास आदिमें भी मातृका रूपके ध्यानमें कहीं भी अर्द्धाक्षरका उल्लेख उन्हें नहीं मिला। वृहन्नारदीय पुराणमें राधिकाके सहस्र-नाम-स्तोत्रमें वृन्दावनेश्वरी श्रीमती राधिकाजीको पचास वर्णरूपिणी कहा गया है। उसे देखकर उसका सन्देह और भी बढ़ गया, उन्होंने ऐसा सोचा कि क्या कविराज गोस्वामीने भ्रमवशतः ऐसा लिखा है? किन्तु उनमें भ्रम होनेकी सम्भावना नहीं, वे भ्रम-प्रमादादि दोषोंसे सर्वथा रहित सर्वज्ञ हैं। यदि उक्त मन्त्रमें खण्ड 'त्' को अर्द्धाक्षर मानते हैं तो कृष्णदास कविराज गोस्वामी क्रमभंगके दोषसे दोषी ठहरते हैं क्योंकि उन्होंने ऐसा वर्णन किया है—

सखि हे! कृष्णमुख द्विजराजराज।
कृष्णवपु सिंहासने, वसि राज्य शासने
करे संगे चन्द्रेर समाज॥

दुइ गण्ड सुचिक्कण, जिनि मणि सुदर्पण,
सेइ दुइ पूर्णचन्द्र जानि।
ललाट अष्टमी-इन्दु ताहाते चन्दन-बिन्दु
सेइ एक पूर्णचन्द्र मानि॥
कर नख चांदेर हाट वंशीर उपर करे नाट
तार गीत मुरलीर तान।
पद नख चन्द्रगण तले करे सुनर्त्तन
यार ध्वनि नूपुरेर गान॥

श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने उक्त पंक्तियोंमें श्रीकृष्णचन्द्रके मुखको पहला एक चन्द्र बतलाया है, तत्पश्चात् उनके दोनों गालोंको एक-एक पूर्णचन्द्र माना है, ललाटके ऊपरी भागमें चन्दनबिन्दुको चौथा पूर्णचन्द्र माना है तथा चन्दनबिन्दुके नीचे ललाट प्रदेशको अष्टमीका चन्द्र अर्थात् अर्द्धचन्द्र बतलाया है। इस वर्णनके अनुसार पंचम अक्षर ही अर्द्धाक्षर होता है, किन्तु खण्ड 'त्' को अर्द्धाक्षर माननेसे अन्तिम अक्षर ही अर्द्धाक्षर होता है, पञ्चम अक्षर अर्द्धाक्षर नहीं हो पाता। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरजी अर्द्धाक्षरका निर्णय न कर सकनेके कारण बड़ी द्विविधामें फंस गये। उन्होंने विचार किया यदि मन्त्राक्षर **स्फूर्ति** न हो, तो मन्त्रदेवताकी **स्फूर्ति** होना असम्भव है। अतएव उपास्य देवताका दर्शन न होनेसे मर जाना ही अच्छा है, ऐसा सोचकर देह-त्याग करनेकी अभिलाषासे रातमें राधाकुण्डके तट पर उपस्थित हुए। रात्रिका द्वितीय प्रहर व्यतीत होनेपर अकस्मात् तन्द्राकी स्थितिमें

श्रीवृषभानुनन्दिनीका दर्शन किया। उन्होंने बड़े स्नेहसे कहा—"हे विश्वनाथ! हे हरिवल्लभ! खेद मत करो, श्रीकृष्णदास कविराजने जो कुछ लिखा है, वह परम सत्य है। मेरे अनुग्रहसे वे मेरे अन्तःकरणकी सभी भावनाओंको जानते हैं। उनके वचनोंमें तनिक भी सन्देह मत करना। काम-गायत्री मेरे और मेरे प्राणवल्लभकी उपासनाका मन्त्र है। हमलोग मन्त्राक्षरके द्वारा भक्तोंके निकट प्रकाशित होते हैं। मेरे अनुग्रहके बिना हमलोगोंको कोई भी जाननेमें समर्थ नहीं है।" 'वणागमभास्वत्' नामक ग्रन्थमें अर्द्धाक्षरका निरुपण किया है, उसे देखकर ही श्रीकृष्णदास कविराजने काम-गायत्रीका स्वरूप-निर्णय किया है। तुम इसे देखकर श्रद्धालु जनोंके उपकारके लिए प्रकाशित करो।

स्वयं वृषभानुनन्दिनी श्रीमती राधिकाके इस आदेशका श्रवणकर विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर जग उठे। और 'हा राधे! हा राधे!' कहकर विलाप करने लगे। अनन्तर धैर्य धारण कर उनकी आज्ञा पालनमें तत्पर हो गये। श्रीमती राधिकाने अर्द्धाक्षर निर्णय करनेके विषयमें जो इंगित दिया था, उसके अनुसार उक्त मन्त्रमें 'वि' के पूर्व जो 'य' है, वही अर्द्धाक्षर है। उसके अतिरिक्त अन्य सभी अक्षर पूर्णाक्षर या पूर्णचन्द्र हैं।

श्रीमती राधिकाजीकी कृपासे मन्त्रका अर्थ अवगत होकर श्रीलविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने अपने इष्टदेवका साक्षाद् दर्शन किया तथा सिद्धदेहके द्वारा नित्यलीलामें परिकरभुक्त हुए। इसके पश्चात् उन्होंने राधाकुण्डके तट पर श्रीगोकुलानन्द नामक श्रीविग्रहकी प्रतिष्ठाकी तथा वहीं रहते समय श्रीवृन्दावनकी नित्यलीलाओंका माधुर्य अनुभवकर श्रील कविकर्णपूर द्वारा रचित आनन्दवृन्दावनचम्पूकी सुखवर्त्तिनी नामक टीकाकी रचना की।

राधापरस्तीरकुटीरवर्त्तिनः प्राप्तव्यवृन्दावन चक्रवर्त्तिनः।
आनन्दचम्पू विवृतिप्रवर्त्तिनः सान्तो–गतिर्म्मे सुमहानिवर्त्तिनः॥

परिणतवयसमें विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर अन्तर्दशा और अर्द्धबाह्य दशामें रहकर भजन करनेमें ही अपना अधिकांश समय व्यतीत करने लगे। उनके प्रधान शिष्य बलदेव विद्याभूषण ही उनके बदलेमें शास्त्र–अध्यापनका कार्य करने लगे।

परकीयावादकी पुनर्स्थापना

श्रीधाम वृन्दावनमें षड़गोस्वामियोंका प्रभाव किञ्चित् क्षीण होनेपर स्वकीया और परकीयावादका मतभेद उठ खड़ा हुआ। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने स्वकीयावाद भ्रमको दूर करनेके लिए सुसिद्धान्तपूर्ण 'रागवर्त्मचन्द्रिका' तथा 'गोपीप्रेमामृत' नामक ग्रन्थकी रचनाएँकी। तत्पश्चात् उन्होंने उज्ज्वलनीलमणि की 'लघुत्वमत्र' (१।२१) श्लोककी आनन्दचन्द्रिका टीकामें शास्त्रीय प्रमाणों और अकाट्य युक्तियोंके द्वारा स्वकीयावादका खण्डन कर परकीया विचारकी स्थापना की है। श्रीमद्भागवतकी सारार्थदर्शिनी टीकामें भी उन्होंने परकीया भावकी पुष्टि की है।

ऐसा कहा जाता है कि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीके समय कुछ पण्डितोंने परकीया उपासनाके विषयमें श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरका विरोध किया, किन्तु चक्रवर्ती ठाकुरजीने अपनी प्रगाढ़ विद्वता तथा अकाट्य युक्तियोंके द्वारा उन्हें परास्त कर दिया। इससे पण्डितोंने उन्हें जानसे मारनेका संकल्प किया। प्रभातकालीन अंधकारमें श्रीधाम वृन्दावनकी परिक्रमा करते समय श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरको किसी सघन

अंधकारपूर्ण कुञ्जमें जानसे मार डालनेकी योजना बनायी गयी। विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरके परिक्रमा करते-करते उक्त सघन कुञ्जके समीप पहुँचने पर वहाँ विरोधियोंने विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरको मारना चाहा, किन्तु अकस्मात् देखा विश्वनाथ चक्रवर्ती वहाँ नहीं थे। अपितु उनके स्थान पर एक सुन्दर व्रजबालिकाको अपनी दो-तीन सहेलियोंके साथ पुष्पचयन करते हुए देखा। पण्डितोंने उस बालिकासे पूछा—लाली! अभी-अभी एक महात्मा इधर आ रहे थे, वे किधर गये? क्या तुमने उनको देखा है? बालिकाने उत्तर दिया—'देखा तो था, किन्तु किधर गये मुझे मालूम नहीं'। बालिकाके अद्भुत रूप-सौन्दर्य, कटाक्ष, भावभंगी और मन्द-मुस्कानको देख करके पण्डित समाज मुग्ध हो गया। उनके मनका सारा कल्मष दूर हो गया और उनका हृदय द्रवित हो गया। पण्डितोंके द्वारा परिचय पूछे जाने पर बालिकाने कहा, "मैं स्वामिनी श्रीमती राधिकाकी सहचरी हूँ। वे इस समय अपने ससुराल यावटमें विराजमान हैं। उन्होंने मुझे पुष्पचयन करनेके लिए भेजा है। ऐसा कहते-कहते वे अन्तर्धान हो गयीं और उसके स्थान पर श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरको पुनः देखा। पण्डितोंने श्रील चक्रवर्ती ठाकुरजीके चरणोंमें गिरकर क्षमा प्रार्थना की, चक्रवर्ती ठाकुरजीने उन्हें क्षमा कर दिया। श्रीचक्रवर्तीचरणके जीवनमें ऐसी-ऐसी ही आश्चर्यपूर्ण बातें सुनी जाती है। इस प्रकार इन्होंने स्वकीयावादका खण्डनकर शुद्ध परकीया तत्त्वकी स्थापना की। इनका यह कार्य गौड़ीय वैष्णवोंके लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है।

श्रीलविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने जिस प्रकारसे श्रीगौड़ीय-वैष्णव

धर्मकी मर्यादाकी रक्षा कर पुनः श्रीवृन्दावनमें श्रीगौड़ीय-वैष्णव धर्मका प्रभाव स्थापित किया है उसका विवेचन करनेसे उनकी अलौकिक प्रतिभासे विस्मित होना पड़ता है। उनके इस असाधारण कार्यके लिए श्रीगौड़ीय-वैष्णवाचार्योंने एक श्लोक लिखा है—

विश्वस्य नाथरूपोऽसौ भक्तिवर्त्मप्रदर्शनात्।
भक्तचक्रे वर्त्तितत्वात् चक्रवर्त्त्याख्ययाभवत्॥

अर्थात् भक्तिपथके प्रदर्शक होनेके कारण विश्वके नाथ अर्थात् विश्वनाथ तथा शुद्धभक्तचक्र (भक्तमण्डली) में सदा अवस्थित रहनेके कारण चक्रवर्ती अर्थात् विश्वनाथ चक्रवर्ती नाम हुआ है।

वे लगभग १६७६ शकाब्दमें लगभग एक सौ वर्षकी उम्रमें माघ शुक्ला पञ्चमी तिथिमें श्रीराधाकुण्डमें अन्तर्दशाकी अवस्थामें श्रीवृन्दावनमें अप्रकट हुए। आज भी श्रीधामवृन्दावनमें श्रीगोकुलानन्द मन्दिरके निकट उनकी समाधि विराजमान है।

इन्होंने श्रील रूपगोस्वामीका पदाङ्क अनुसरण कर विपुल अप्राकृत भक्ति साहित्यका सृजनकर विश्वमें श्रीमन्महाप्रभुके मनोऽभीष्टको स्थापन किया है। साथ ही उन्होंने श्रीरूपानुग विरुद्ध कुसिद्धान्तोंका खण्डन भी किया है। इस प्रकार गौड़ीय वैष्णव जगतमें ये परमोज्ज्वल आचार्य एवं प्रामाणिक महाजनके रूपमें ही प्रपूजित हुए हैं। ये अप्राकृत महादार्शनिक, अप्राकृत कवि और अप्राकृत रसिकभक्त तीनों रूपोंमें ही विख्यात हैं। कृष्णदास नामक एक वैष्णव पदकर्त्ताने श्रीलचक्रवर्ती ठाकुर द्वारा रचित माधुर्यकादम्बिनीके पद्यानुवादके उपसंहारमें लिखा है—

माधुर्यकादम्बिनी-ग्रन्थ जगत कैल धन्य
चक्रवर्ती-मुखे वक्ता आपनि श्रीकृष्णचैतन्य।
केह कहेन-चक्रवर्ती श्रीरूपेर अवतार।
कठिन ये तत्त्व सरल करिते प्रचार॥
ओहे गुणनिधि श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती।
कि जानिव तोमार गुण मुञि मूढ़मति॥

अर्थात् श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने माधुर्यकादम्बिनी ग्रन्थकी रचना कर समग्र जगतको धन्य कर दिया। वास्तवमें श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु ही इस ग्रन्थके वक्ता हैं, वे ही श्रीचक्रवर्तीके मुखसे बोल रहे हैं। कुछ लोगोंका कहना है श्रीचक्रवर्ती ठाकुर श्रील रूप गोस्वामीके अवतार है। वे अत्यन्त सुकठिन तत्त्वोंको अत्यन्त सरल रूपमें वर्णन करनेकी कलामें अत्यन्त प्रवीण हैं। अहो! दयाके सागर श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरजी! मैं अतिशय मूढ़ व्यक्ति हूँ। आप कृपा कर इन अप्राकृत गुणोंको मेरे हृदयमें स्फूर्ति करावें—श्रीचरणोंमें ऐसी प्रार्थना है।

गौड़ीय वैष्णवाचार्योंमें श्रीलविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकी भाँति अनेकानेक ग्रन्थोंके लेखक बहुत कम ही आविर्भूत हुए हैं। अभी भी साधारण वैष्णव समाजमें श्रील चक्रवर्ती ठाकुरके तीन ग्रन्थोंके सम्बन्धमें एक प्रवाद सुप्रचलित है—**'किरण-बिन्दु-कणा, एइ तीन निये वैष्णवपना।'**

इन्होंने गौड़ीय वैष्णव भक्ति साहित्य भण्डारकी अतुल-सम्पद्-स्वरूप जिन ग्रन्थों, टीकाओं और स्तवों आदिकी रचनाएँ की हैं, नीचे उनकी तालिका प्रस्तुत की जा रही है।

(१) व्रजरीतिचिन्तामणि, (२) चमत्कारचन्द्रिका, (३)

प्रेमसम्पुटम् (खण्डकाव्यम्), (४) गीतावली, (५) सुबोधिनी (अलंकार-कौस्तुभ टीका), (६) आनन्द-चन्द्रिका (उज्ज्वल-नीलमणिटीका), (७) श्रीगोपालतापनी टीका, (८) स्तवामृतलहरी धृत—(क) श्रीगुरुतत्त्वाष्टकम्, (ख) मन्त्रदातृ-गुरोरष्टकम्, (ग) परमगुरोरष्टकम्, (घ) परात्परगुरोरष्टकम्, (ङ) परमपरात्पर गुरोरष्टकम्, (च) श्रीलोकनाथाष्टकम्, (छ) श्रीशचीनन्दनाष्टकम्, (ज) श्रीस्वरूप-चरितामृतम्, (झ) श्रीस्वप्नविलासामृतम्, (ञ) श्रीगोपालदेवाष्टकम्, (ट) श्रीमदनमोहनाष्टकम्, (ठ) श्रीगोविन्दाष्टकम्, (ड) श्रीगोपीनाथाष्टकम्, (ढ) श्रीगोकुलानन्दाष्टकम्, (ण) स्वयंभगवदष्टकम्, (त) श्रीराधाकुण्डाष्टकम्, (थ) जगन्मोहनाष्टकम्, (द) अनुरागवल्ली, (ध) श्रीवृन्दादेव्याष्टकम्, (न) श्रीराधिका-ध्यानामृतम्, (प) श्रीरूपचिन्तामणिः, (फ) श्रीनन्दीश्वराष्टकम्, (ब) श्रीवृन्दावनाष्टकम्, (भ) श्रीगोवर्धनाष्टकम्, (म) श्रीसंकल्प-कल्पद्रुमः, (य) श्रीनिकुञ्जविरुदावली (विरुत्काव्य), (र) सुरतकथामृतम् (आर्यशतकम्), (ल) श्रीश्यामकुण्डाष्टकम्। (९) श्रीकृष्णभावनामृतम् महाकाव्यम्, (१०) श्रीभागवतामृत-कणा, (११) श्रीउज्ज्वलनीलमणि किरणः, (१२) श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु-बिन्दुः, (१३) रागवर्त्म-चन्द्रिका, (१४) ऐश्वर्यकादम्बिनी (अप्राप्या), (१५) श्रीमाधुर्यकादम्बिनी, (१६) श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु टीका, (१७) श्रीउज्ज्वलनीलमणि टीका, (१८) दानकेलिकौमुदी टीका, (१९) श्रीललितमाधव नाटक टीका, (२०) श्रीचैतन्यचरितामृत टीका (असम्पूर्ण), (२१) ब्रह्मसंहिता टीका, (२२) श्रीमद्भगवद्गीताकी 'सारार्थवर्षिणी' टीका, (२३) श्रीमद्भागवतकी 'सारार्थदर्शिनी' टीका।

श्रीगौड़ीय-सम्प्रदायैक-संरक्षक, श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति तथा समितिके अन्तर्गत श्रीगौड़ीयमठोंके प्रतिष्ठाता आचार्य-केशरी मदीय परमाराध्य श्रीगुरुदेव अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने स्वरचित ग्रन्थोंके अतिरिक्त श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर आदि पूर्वाचार्योंके ग्रन्थोंका बंगला भाषामें पुनः प्रकाशन किया है। उनकी हार्दिक अभिलाषा, उत्साहदान और अहैतुकी कृपासे आज राष्ट्रीय भाषा हिन्दीमें जैवधर्म, श्रीचैतन्य-शिक्षामृत, श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी शिक्षा, श्रीशिक्षाष्टक आदि ग्रन्थोंके हिन्दी-संस्करण प्रकाशित हुए हैं तथा क्रमशः प्रकाशित हो रहे हैं।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वर्तमान सभापति एवं आचार्य मेरे परमपूज्य सतीर्थवर परिव्राजकाचार्यवर्य श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज एक परम पराविद्यानुरागी एवं श्रीगुरुपादपद्मके अन्तरंग प्रिय सेवक हैं। वे मेरे प्रति अनुग्रहपूर्वक श्रीश्रीलगुरुदेवके श्रीकरकमलोंमें उनके इस प्रिय 'उज्ज्वलनीलमणिकिरण' ग्रन्थको समर्पण कर उनका मनोऽभीष्ट पूर्ण करें—यही उनके श्रीचरणोंमें विनीत प्रार्थना है।

इन ग्रन्थकी प्रतिलिपि प्रस्तुत करने प्रूफ-संशोधन आदि विविध सेवाकार्योंके लिए श्रीओमप्रकाश ब्रजवासी साहित्यरत्न, श्रीमान शुभानन्द ब्रह्मचारी, श्रीमान प्रेमानन्द ब्रह्मचारी, श्रीमान नवीनकृष्ण ब्रह्मचारी, श्रीमान सूर्यकान्त ब्रह्मचारी और श्रीमान अनङ्गमोहन ब्रह्मचारी आदि तथा आर्थिक सेवानुकूल्यके लिए श्रीमान् विनोदबिहारी दासाधिकारी और श्रीमान् सोमनाथ दासाधिकारीकी सेवा-प्रचेष्टा सराहनीय एवं विशेष उल्लेखनीय है। श्रीश्रीगुरु-गौरांग-गान्धर्विका-गिरिधारी इन पर प्रचुर कृपा आशीर्वाद करें, उनके

चरणोंमें यही प्रार्थना है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि भक्ति-पिपासु, विशेषतः ब्रजरसके प्रति लुब्ध रागानुगाभक्तिके साधकजनोंमें इस ग्रन्थका समादर होगा और श्रद्धालुजन इस ग्रन्थका पाठकर श्रीचैतन्यमहाप्रभुके प्रेमधनमें प्रवेशाधिकार प्राप्त करेंगे।

अन्तमें भगवत्करुणाके घनविग्रह परमाराध्य श्रीश्रीलगुरुपादपद्म हमारे प्रति प्रचुर कृपावारि वर्षण करें, जिससे हम उनकी मनोऽभीष्ट सेवामें अधिकाधिक प्राप्त करें—यही उनके श्रीकृष्णप्रेम प्रदानकारी श्रीचरणोंमें सकातर प्रार्थना है। **अलमतिविस्तरेण।**

अक्षय तृतीया
५०७ गौराब्द
१११५ भारतीयाब्द
२५ अप्रेल, १९९३

श्रीहरि-गुरु-वैष्णव कृपालेशप्रार्थी
दीनहीन
त्रिदण्डिभिक्षु श्रीभक्तिवेदान्त नारायण

सम्पादकीय वक्तव्य

बड़े ही आनन्दके साथ सूचित किया जा रहा है कि श्रीश्रीगुरु–गौराङ्ग–गान्धर्विका–गिरिधारीजी की अपार करुणासे गौड़ीय वेदान्त प्राकशन द्वारा 'उज्ज्वलनीलमणिकिरण' ग्रन्थका द्वितीय संस्करण परमाराध्य श्रील माधवेन्द्र पुरीपादकी शुभ आविर्भाव तिथि–पूजाके दिन नवकलेवर सहित आत्मप्रकाश करने जा रहा है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने इस ग्रन्थके अन्तमें लिखा है कि जिन्होंने व्याकरणका अध्ययन नहीं किया है, किन्तु श्रीहरिभजन–परायण हैं, उनके लिए यह उज्ज्वलनीलमाणिकिरण पथ–पदर्शक है।

पहले संस्करणमें अक्षर छोटे होनेके कारण पाठकोंको पढ़नेमें कुछ असुविधा होती थी, इसलिए उनकी सुविधाके लिए वर्त्तमान संस्करणमें अक्षरोंको बड़ा कर दिया गया है। अक्षर–योजना, भ्रम–संशोधन, मुद्रण आदि सेवा–कार्योंके लिए श्रीमान् ओमप्रकाश ब्रजवासी एम.ए., एल.एल.बी., साहित्यरत्न तथा श्रीमान् कृष्णकृपा ब्रह्मचारीने प्रचुर प्रचेष्टा की है। श्रीश्रीगुरु–गौराङ्ग–गान्धर्विका–गिरिधारी इन पर शुभ दृष्टिपात करें, यही उनके श्रीचरणोंमे सकातर प्रार्थना है।

श्रीजगन्नाथदेवकी स्नान यात्रा
श्रीगौराब्द ५१९

श्रीगुरु–वैष्णव–कृपालेश प्रार्थी
त्रिदण्डिभिक्षु
श्रीभक्तिवेदान्त नारायण

विषय-सूची

	विषय	पृष्ठसं॰
१)	नायकभेद	१
२)	नायिका-विभाग	४
३)	नायिका-स्वभाव	११
४)	दूतीभेद	१४
५)	सखीभेद	१५
६)	वयभेद	१७
७)	उद्दीपन-विभाव	१८
८)	अनुभाव	१८
९)	सात्त्विक	२१
१०)	व्यभिचारी	२२
११)	भावोत्पत्ति	२२
१२)	रतिके भेद	२३
१३)	समर्था रति	२४
१४)	आश्रय-निर्णय	३१
१५)	स्थायीभाव	३२

श्रीउज्ज्वलनीलमणिकिरणः

नायकभेद

अथोज्ज्वलरसस्तत्र नायकचूड़ामणिः श्रीकृष्णः। प्रथमं गोकुल-मथुराद्वारकासु क्रमेण पूर्णतमः पूर्णतरः पूर्ण इति त्रिविधः। धीरोदात्तः धीरललितः धीरोद्धतः धीरशान्तः इति प्रत्येकं चतुर्विधः। तत्र रघुनाथवत् गम्भीरो विनयी यथार्हसर्व्वजनसम्मानकारीत्यादिगुणवान् धीरोदात्तः। कन्दर्पवत् प्रेयसीवेशो निश्चिन्तो नवतारुण्यो विदग्द्धो धीरललितः। भीमसेनवत् उद्धत आत्मश्लाघारोषकैतवादिगुणयुक्तो धीरोद्धतः। युधिष्ठिरवत् धार्म्मिको जितेन्द्रियः शास्त्रदर्शी धीरशान्तः। पुनश्च पत्युपपतित्वेन प्रत्येकं स द्विविधः। एवं पुनश्च अनुकूलो दक्षिणः शठो धृष्ट इति प्रत्येकं चतुर्विधः। एकस्यामेव नायिकायामनुरागी अनुकूलः, सर्व्वत्र समो दक्षिणः, साक्षात् प्रियं व्यक्ति परोक्षे अप्रियं करोति यः स शठः, अन्यकान्ता-सम्भोगचिह्नादियुक्तोऽपि निर्भयः मिथ्यावादी यः धृष्टः। एवं षड़नवतिविधा नायकभेदाः॥१॥

किरण-किञ्जल्क-वृत्ति

नमः ॐ विष्णुपादाय गौरप्रेष्ठाय भूतले।
श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव इति नामिने॥
अतिमर्त्य चरित्राय स्वाश्रितानाञ्च पालिने।

जीवदुःखे सदात्तार्य श्रीनाम-प्रेम दायिने॥
विश्वस्य नाथरूपोऽसौ भक्तिवर्त्मप्रदर्शनात्।
भक्तचक्रे वर्त्तितत्वात् चक्रवर्त्त्याख्ययाभवत्॥
वाञ्छा कल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः॥
श्रीचैतन्य मनोऽभीष्टं स्थापितं येन भूतले।
स्वयं रूपः कदा मह्यं ददाति स्वपदान्तिकम्॥
नमो महावदान्याय कृष्णप्रेम प्रदाय ते।
कृष्णाय कृष्ण-चैतन्य-नाम्ने गौरत्त्विषे नमः॥

सर्वप्रथम नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद् भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी गुरुवर, श्रीरूपानुग गुरुवर्ग एवं श्रीश्रीगौरांग-गान्धर्विका-गिरिधारी श्रीश्रीराधाविनोदबिहारी—इन सभीके चरण-कमलोंमें पुनः पुनः प्रणामपूर्वक उनकी अहैतुकी कृपाशीर्वाद प्रार्थना करते हुए श्रीरूपानुगवर महामहोपाध्याय श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर द्वारा विरचित 'उज्ज्वलनील-मणिकिरणलेश' का **'किरण किञ्जल्क वृत्ति'** नामक भावानुवाद यह दीन-हीन अधम आरम्भ कर रहा है। श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुबिन्दुके वर्णनके अनन्तर उज्ज्वल रसका वर्णन किया जा रहा है। उज्ज्वलभक्तिरसमें श्रीकृष्ण ही नायक-चूड़ामणि हैं।

नायकके भेद

किरण-किञ्जल्क-वृत्ति—नायक चूड़ामणि श्रीकृष्ण गोकुल, मथुरा और द्वारकामें क्रमशः पूर्णतम, पूर्णतर और पूर्ण नायक हैं। अर्थात् गोकुलमें पूर्णतम, मथुरामें पूर्णतर और द्वारकामें

पूर्ण—तीन प्रकारके नायक (श्रीकृष्ण ही) हैं।

पुनः धीरोदात्त, धीरललित, धीरोद्धत और धीरशान्तके भेदसे प्रत्येक उक्त नायक ही चार प्रकारके होते हैं। श्रीरामचन्द्रकी भाँति गम्भीर, विनयी, सबका यथायोग्य सम्मानकारी इत्यादि अनेक गुणशाली नायक 'धीरोदात्त' कहलाता है। कामदेवके समान प्रेयसीवश, निश्चिन्त, नवयौवन-सम्पन्न, विदग्ध (रसिक, चतुर, पटु) नायक 'धीरललित' है। भीमसेनकी भाँति उद्धत, आत्मश्लाघापरायण, रोषयुक्त और दूसरोंकी वंचना करनेमें पटु आदि गुणोंसे युक्त नायक 'धीरोद्धत' होता है। युधिष्ठिरकी भांति धार्मिक, जितेन्द्रिय, शास्त्र-ज्ञान-सम्पन्न नायक 'धीर शान्त' कहलाता है। उक्त ये सभी नायक पति[१] और उपपति[२] भेदसे दो प्रकारके होते हैं। पुनः ये सभी अनुकूल, दक्षिण, शठ और

---

१) **पति—**विप्र और अग्निको साक्षी रखकर वैदिक रीतिके अनुसार जो कन्याका पाणिग्रहण करते हैं, वे कन्याके 'पति' हैं।

२) **उपपति—**जो परकीया नायिकाके प्रति आसक्ति वशतः धर्मका उल्लंघन करते हैं तथा परकीया रमणियोंके प्रेमके आश्रय होते हैं, वे उपपति कहलाते हैं। शास्त्रोंमें तथा लौकिक समाजमें उपपति तथा परकीया स्त्रियाँ अत्यन्त हेय और घृणित मानी जाती हैं। प्राकृत नायकोंके सम्बन्धमें यह सम्पूर्ण सत्य है, किन्तु श्रीकृष्णके सम्बन्धमें ऐसी बात प्रयोज्य नहीं होती, क्योंकि श्रीकृष्ण धर्माधर्मके नियन्ता, भगवद्-अवतारोंके भी मूल अवतारी हैं। श्रीमती राधिका उनकी स्वरूपभूता ह्लादिनी या पराशक्ति है। अन्यान्य गोपियाँ श्रीमती राधिकाकी कायव्यूह, प्रकाश या अंश-स्वरूप है। अतएव श्रीकृष्ण एवं उनकी स्वरूपभूत शक्तियोंके विशुद्ध विलासमें अनुपादेयताका लेश भी नहीं है।

धृष्ट भेदसे चार-चार प्रकारके होते हैं। एक ही नायिकामें अनुरक्त नायक 'अनुकूल' नायक कहलाता है। अनेक नायिकाओंमें समान रूपसे अनुरक्त (एक समान व्यवहार करने वाला) नायक 'दक्षिण' है। जो प्रेयसीके सम्मुख मीठी-मीठी बातें करता है, किन्तु पीछेसे प्रेयसीका अनिष्ट साधन करता है, वह 'शठ' नायक कहलाता है। अन्य कान्ताका सम्भोग-चिह्न धारण करने पर भी भयशून्य और मिथ्यावादी नायकको 'धृष्ट' नायक कहते हैं॥१॥

नायिका-विभाग

अथाश्रयालम्बननायिकाः प्रथमं स्वीयाः परकीया इति द्विविधाः। कात्यायनीव्रतपराणां कन्यानां मध्ये या गान्धर्वेण विवाहिताः ताः स्वीयाः। तदन्या धन्यादयः कन्याः परकीया एव। श्रीराधाद्यास्तु प्रौढ़ाः परकीया एव। कियन्त्यः गोकुले स्वीया अपि पित्रादिशङ्कया परकीया एव। द्वारकायां रूक्मिण्याद्याः स्वीया एव। ततश्च मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा इति त्रिविधाः। मध्या मानसमये धीरामध्या, अधीरामध्या, धीराधीरामध्या इति त्रिविधाः। वक्रोक्ति पवित्रभर्त्सनकारिणी या सा धीरामध्या। रोषतः कठोरभर्त्सनकारिणी या सा अधीरामध्या। मिश्रितवाक्या या सा धीराधीरामध्या श्रीराधा। तत्र प्रगल्भापि धीरप्रगल्भा, अधीरप्रगल्भा, धीराधीरा प्रगल्भा चेति त्रिविधा। तत्र निजरोषगोपनपरा सुरते उदासीना या सा धीरप्रगल्भा पालिका चन्द्रावली भद्रा च। निष्ठुरतर्ज्जनेन कर्णोत्पलेन पद्मेन या कृष्णं ताड़यति सा अधीर प्रगल्भा श्यामला। रोषसंगोपनं कृत्वा किंचित तर्ज्जनं करोति या सा धीराधीर प्रगल्भा मंगला। मुग्धातिरोषेण मौनमात्रपरा एकविधैव एवं त्रिविधा मध्या प्रगल्भा त्रिविधा मुग्धा एकविधा इति सप्तधा। स्वीया-परकीया-भेदेन

चतुर्दशविधा। कन्या च मुग्धैवैकविधा इति पंचदशविधा नायिका भवन्ति इति।

अथाष्टनायिकाः—अभिसारिका, वासकसज्जा, विरहोत्कण्ठिता, विप्रलब्धा, खण्डिता, कलहान्तरिता, प्रोषितभर्त्तृका, स्वाधीनभर्त्तृका। अभिसारयति कृष्णं स्वयं वाभिसरति या साभिसारिका। कुञ्जमन्दिरे सुरतशय्यासनं माल्यताम्बुलादिकं मदनोत्सुका करोति या सा वासकसज्जा। कृष्णविलम्बे सति तेन विरहेणोत्कण्ठ्यते या सा विरहोत्कण्ठिता। संकेतं कृत्वा यदि न यात्येव कृष्ण स्तदा विप्रलब्धा। प्रातरागतम् अन्यकान्तासंभोग चिह्नयुक्तं कृष्णं रोषेण पश्यति या सा खण्डिता। मानान्ते पश्चात्तापं करोति या सा कलहान्तरिता। कृष्णस्य मथुरागमने सति या दुःखार्त्ता सा प्रोषित भर्त्तृका। सुरतान्ते वेशाद्यर्थं या कृष्णमाज्ञापयति सा स्वाधीनभर्त्तृका। एवं पंचशानामष्टगुणितत्वेन विंशत्युत्तरशतानि। पुनश्चोत्तममध्य-मकनिष्ठत्वेन षष्ट्युत्तराणि त्रीणि शतानि। नायिकाभेदानां तासां व्रजसुन्दरीणां मध्ये काश्चिन्नित्यसिद्धाः श्रीराधाचन्द्रावल्यादयः। काश्चित् साधनसिद्धाः। तत्र काश्चित् मुनिपूर्वाः काश्चित श्रुतिपूर्वाः काश्चित देव्य इति ज्ञेयाः॥२॥

श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुमें शान्त, दास्य, सख्य और वात्सल्य विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है; किन्तु साधारण भक्तोंके लिए मधुर रसका सविशेष वर्णन उपयोगी नहीं होगा, इस विचारसे वहाँ सब रसोंके साथ इस रसका वर्णन अत्यन्त संक्षेपमें ही किया गया है। उज्ज्वलनीलमणि रूप परिशिष्ट ग्रन्थमें इसका सांगोपांग वर्णन किया गया है। इस 'उज्ज्वलनीलमणिकिरण' ग्रन्थमें उज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थका संक्षिप्त सार वर्णन किया गया है।

भक्तिरसामृतसिन्धुबिन्दु ग्रन्थमें 'प्रियतारति' को उज्ज्वल रसका

नायिका-विभाग

किरण-किञ्जल्क-वृत्ति—प्रथमतः स्वकीया और परकीया भेदसे नायिका दो प्रकारकी होती है। ब्रजमें कात्यायनी-व्रत पालन करनेवाली गोपकन्याओंमें से जिनका गन्धर्व रीतिके अनुसार कृष्णके साथ विवाह हुआ था, वे स्वकीया[१] हैं। एतद्भिन्न धन्यादि गोपकन्याएँ परकीया[२] हैं।

स्थायीभाव बतलाया गया है। जो प्रीति, कृष्णकी प्रेयसियोंके हृदयमें 'कृष्ण ही हमारे प्राणपति हैं' ऐसे अभिमानको साथ लेकर प्रकटित होती है, उसको प्रियता रति कहते हैं। ऐसी प्रियता रतिका प्रेयसीवर्ग ही आश्रय हैं। अर्थात् उक्त प्रेयसीसमूह ही इस रसमें आश्रयालम्बन हैं। पूर्वोक्त सर्वविध गुण-सम्पन्न नवकिशोर-नटवर श्रीकृष्ण ही इस रसके विषयालम्बन हैं। उक्त प्रियतारति रूप, गुण, नामादिके श्रवणसे उद्दीपित होती है। अतः ये रूप, गुण, नामादि उद्दीपन विभाव हैं।

तात्पर्य यह हैं कि नायक-चूड़ामणि श्रीकृष्ण ही विषयालम्बन एवं श्रीराधा आदि कान्तावर्ग आश्रयालम्बन तथा गुण, नाम, चन्द्रादि उद्दीपन विभाव हैं।

१) **स्वकीया—**विप्र और अग्निको साक्षी रखकर पाणिग्रहण विधिके द्वारा विवाहित पत्नी, पतिके आदेशमें सर्वदा तत्पर एवं पतिव्रता धर्मसे अविचलिता स्त्रीको 'स्वकीया' कहते हैं।

२) **परकीया—**जो स्त्री लौकिक एवं पारलौकिक धर्मकी उपेक्षा कर विवाह विधिकी अवज्ञा करती हुई आसक्तिपूर्वक परपुरुषके निकट आत्मसमर्पण करती है।

३) **कन्या—**अविवाहित, सलज्जा, पितामाता द्वारा पालित, सखियोंके साथ क्रीड़ा विषयमें निःशंका, मुग्धा नायिका उपयोगी गुणोंसे युक्त बालिकाओंको कन्यका अथवा कन्या कहते हैं।

प्रौढ़ा[१] श्रीमती राधिका आदि कृष्णबल्लभागण परकीया हैं। इसके अतिरिक्त गोकुलमें कुछ किशोरियाँ स्वकीया होनेपर भी माता-पिता-भाई-बन्धुके भयसे परकीया ही हैं। द्वारकामें रुक्मणी सत्यभामा आदि महिषियाँ स्वकीया हैं।

तदन्तर स्वकीया और परकीया नायिकाएँ तीन-तीन प्रकारकी होती हैं—मुग्धा[२], मध्या[३], प्रगल्भा[४]। मध्या भी मानके समय धीरामध्या, अधीरामध्या और धीराधीरामध्या भेदसे तीन प्रकारकी होती हैं। जो नायिका वक्रोक्तिके द्वारा गम्भीरतापूर्ण भर्त्सना करती हैं, वे धीरामध्या हैं। जो रोषवशतः केवल निष्ठुर वाक्योंका प्रयोग करती हैं, उन्हें अधीरा मध्या कहते

---

१) **प्रौढ़ा**—गोपकुमारोंके साथ विवाहित होनेपर भी जो श्रीकृष्णके प्रति सम्भोग लालसा रखती हैं और अभी तक उनके गर्भसे कोई सन्तान न हुई हो, ऐसी ब्रजनारियोंको परोढ़ा या प्रौढ़ा कहते हैं।

२) **मुग्धा**—नवयौवन सम्पन्ना, कामिनी, रति दानमें वामा, सखियोंके वशीभूत, रति चेष्टामें अतिशय लज्जिता अथच छिपकर सुन्दर रूपसे उसके लिए यत्नशील नायिकाओंको मुग्धा कहते हैं। नायकके अपराधी होनेपर भी उसे सजल नयनोंसे देखती हैं, मान भी नहीं करतीं, प्रिय-अप्रिय बातें भी नहीं करतीं।

३) **मध्या**—नवयौवना, कुछ-कुछ प्रगल्भ स्वभाववाली एवं मदन और लज्जा—ये दोनों जिनमें समान रूपसे हैं। मानमें कभी कोमला और कभी कर्कशा, कभी धीर और कभी अधीर, कभी धीराधीरा स्वभाववाली नायिका मध्या कहलाती हैं।

४) **प्रगल्भा**—नवयौवना, मदान्ध, रति-विषयमें अत्यन्त उत्सुक नायिकाको प्रगल्भा कहते हैं।

हैं। मिश्रित वाक्योंसे (मृदु और कठोर) वचनोंसे भर्त्सना करती हैं, वे धीराधीरामध्या हैं। श्रीमती राधिका ही धीराधीरामध्या सर्वश्रेष्ठ नायिका हैं।

उपर्युक्त प्रगल्भा नायिकाएँ भी धीराप्रगल्भा, अधीराप्रगल्भा और धीराधीराप्रगल्भा भेदसे तीन प्रकारकी होती हैं। अपने रोषको छिपानेवाली अथच कृष्णके आलिंगन आदिके प्रति उदासीन नायिकाओंको धीराप्रगल्भा कहते हैं। व्रजमें चन्द्रावली, पालिका और भद्रा धीराप्रगल्भा हैं। जो निष्ठुर तर्जन एवं कर्णोत्पल (कर्णभूषणके रूपमें व्यवहृत कमल पुष्पादि) प्रभृतिके द्वारा कृष्णको ताड़न करती हैं, वे अधीराप्रगल्भा हैं। व्रजमें श्यामला सखी अधीराप्रगल्भा है। जो रोष छिपाकर किञ्चित् तर्जन करती हैं, वे धीराधीराप्रगल्भा हैं। व्रजमें मंगला–सखी धीराधीराप्रगल्भा हैं। मुग्धा केवल एक प्रकारकी होती हैं। यह अत्यन्त रोष वशतः केवल मौनावलम्बन करती हैं। इस प्रकारसे तीन प्रकारकी मध्या, तीन प्रकारकी प्रगल्भा और एक प्रकारकी मुग्धा कुल सात प्रकारकी हुईं। इनमें स्वकीया और परकीया भेद होनेसे कुल चौदह प्रकारकी हुईं। कन्यका भी मुग्धाकी भाँति एक प्रकारकी है, अतएव पूर्वोक्त चौदह और एक प्रकारकी कन्यका कुल पन्द्रह प्रकारकी नायिकाएँ हुईं।

अष्टनायिका भेद

अवस्था भेदसे नायिकाएँ आठ प्रकारकी होती हैं—अभिसारिका, वासकसज्जा, विरहोत्कण्ठिता, विप्रलब्धा, खण्डिता, कलहान्तरिता, प्रोषितभर्त्तृका एवं स्वाधीनभर्त्तृका। जो नायक श्रीकृष्णको

अभिसार कराती हैं और स्वयं भी नायकके उद्देश्यसे अभिसार करती हैं, उन्हें अभिसारिका कहते हैं। जो कान्त संगकी अभिलाषासे कुञ्ज, शय्या और आसन सजाकर रखती हैं तथा माला, ताम्बूल प्रस्तुत रखती हैं, वे वासकसज्जा नायिका कहलाती हैं। कृष्णके आनेमें विलम्ब होनेपर विरहकी अधिकतासे उत्कण्ठिता होती हैं, वे विरहोत्कण्ठिता हैं। मिलनेका संकेत देकर भी यदि कृष्ण आते ही नहीं हैं, तब उस नायिकाको विप्रलब्धा कहते हैं। प्रातःकालमें अन्य कान्ताका सम्भोग-चिह्न धारणकर नायक-श्रीकृष्णके आने पर उनके प्रति जो रोष-परायण हो जाती हैं, उन्हें खण्डिता या मानवती कहते हैं। जो मान शान्त हो जाने पर सन्तापयुक्त हो जाती हैं, वे कलहान्तरिता नायिका हैं। श्रीकृष्णके मथुरा चले जाने पर जो दुःखसे अत्यन्त आर्त्त हो जाती हैं, वे प्रोषितभर्त्तृका कहलाती हैं। सुरतादि क्रीड़ाके पश्चात् अपने वशीभूत नायक कृष्णको अपना शृंगारादि करनेके लिए जो आदेश देती है, उन्हें स्वाधीनभर्त्तृका कहते हैं।

पूर्वोक्त पन्द्रह प्रकारकी नायिकाएँ पुनः अभिसारिका आदि आठ-आठ प्रकारकी होनेके कारण कुल एक सौ बीस प्रकारकी नायिकाओंकी संख्या हुई। इनमेंसे प्रत्येक प्रकारकी नायिकाएँ उत्तम[१],

---

प्रेमके तारतम्यसे नायिकाएँ उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ तीन प्रकारकी होती हैं।

१) जो नायिकाएँ नायकके क्षणभरके सुख-विधानके लिए भी अपने निखिल कर्मोंका परित्याग कर देती है, नायकके द्वारा सताये जाने पर भी तनिक द्वेष नहीं करतीं, बल्कि ऐसे नायकके दुःखी

मध्यम[१] और कनिष्ठ[२] भेदसे तीन-तीन प्रकारकी होती हैं। अतः सब मिलकर तीन सौ साठ प्रकारकी नायिकाएँ हुईं। विभिन्न प्रकारकी इन व्रजसुन्दरी नायिकाओंमें कोई-कोई नायिका

होनेकी मिथ्या बात सुनकर भी जिनका हृदय विदीर्ण हो जाता है, वे **उत्तम** नायिकाएँ हैं।

१) जो नायकके दुःखी होनेकी बात सुनकर भी केवल खिन्नमात्र होती हैं, उन्हें **मध्यम** नायिका कहते हैं।

२) जो नायकसे मिलनेमें बाधाओंकी आशंकाएँ करती हैं, वे **कनिष्ठा** हैं।

परकीया नायिकाएँ साधनसिद्धा, देवी और नित्यसिद्धा—तीन प्रकारकी होती हैं। उनमें साधनसिद्धा भी दो प्रकारकी होती हैं—यौथिकी और अयौथिकी। जिन्होंने पूर्वजन्ममें बहुतसे सजातीय-साधकोंके साथ एक यूथमें मिलकर साधन-भजन किया था, तत्पश्चात् सिद्धि प्राप्त होने पर, गोपियोंके रूपमें जन्म लेने पर, उन्हें **यौथिकी** साधनसिद्धा कहते हैं। यौथिकी साधनसिद्धा भी दो प्रकारकी होती हैं—मुनिचरी और श्रुतिचरी। पद्मपुराणके अनुसार दण्डकारण्यवासी कतिपय गोपाल उपासक मुनियोंने एकत्रित होकर श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे सिद्धि पाकर व्रजमें गोपी देह प्राप्तकी थी, इन्हें यौथिकी मुनिचरी कहते हैं। कतिपय महासूक्ष्मदर्शी उपनिषदोंने गोपियोंका असमोर्द्ध सौभाग्य दर्शन कर महाविस्मित होकर श्रद्धापूर्वक कठोर तपस्या करके व्रजमें प्रेम-सम्पत्तियुक्त गोपीके रूपमें जन्म ग्रहण किया था, इन्हें श्रुतिचरी या उपनिषद्चरी कहते हैं। सामूहिक रूपमें तपस्या द्वारा सिद्धि प्राप्तकर गोपी देह प्राप्तिके कारण, इन्हें यौथिकी साधनसिद्धा कहते हैं। **अयौथिकी**—जो श्रद्धालु पिछले जन्मोंमें गोपी-भावसे लुब्ध होकर रागानुगा भजन-साधनके द्वारा सिद्धि प्राप्त करने पर एकाकी, दो-दो या तीन-तीन एकसाथ

'नित्यसिद्धा' होती हैं। जैसे—राधा, चन्द्रावली आदि। कोई-कोई 'साधनसिद्धा' होती हैं और इन साधनसिद्धाओंमें भी पूर्वजन्ममें कोई-कोई मुनि, कोई श्रुति और कोई देवियाँ भी थीं॥२॥

नायिका स्वभावः

अथ स्वभावाः। काश्चित् प्रखराः श्यामलामंगलादयः। काश्चिन्मध्याः श्रीराधिकापालिप्रभृतयः। काश्चिन्मृद्वीति ख्यातास्चन्द्रावल्यादयः। अथ स्वपक्षः सुहृत्पक्षः तटस्थपक्षो विपक्ष इति भेदचतुष्टयं स्यात्। श्रीराधायाः स्वपक्षः ललितावशाखादिः, सुहृतपक्षः श्यामला यूथेश्वरी, तटस्थपक्षः भद्रा, प्रतिपक्षश्चन्द्रावली। तत्र काश्चिद्वामाः काश्चिद्दक्षिणाः स्युः। श्रीमती राधिका वामा मध्या नीलवस्त्रा रक्तवस्त्रा च ललिता प्रखरा शिखिपिच्छवसना। विशाखा वामा मध्या तारावलिवसना। इन्दुरेखा वामा प्रखरा अरुणवस्त्रा। रंगदेवीसुदेव्यौ वामे प्रखरे रक्तवस्त्रा च । सर्व्वा

गोपीके रूपमें जन्म ग्रहण करते हैं, वे अयौथिकी साधन सिद्धा कहलाते हैं। ये अयौथिकी साधन सिद्धा भी दो प्रकारकी होती हैं—प्राचीना और नवीना। इनमेंसे प्राचीना यौथिकीगण नित्यसिद्धा गोपियोंके साथ बहुत समय पूर्व ही सालोक्य प्राप्त हैं और नवीनागण मनुष्य, देव और गन्धर्व आदि जन्मजन्मान्तरोंमें मानुषी या हरिणी आदि योनियोंमें 'व्रजमण्डल' में जन्म ग्रहण करती हैं। **देवियाँ**—श्रीकृष्ण जब अंशरूपसे देवयोनियोंमें अवतार लेते हैं, तब उनके साथ-साथ ही नित्यकान्ताओंके अंश भी देवियोंके रूपमें अवतरित होते हैं, वे देवियाँ व्रजमें कृष्णावतारके समय गोपकन्याओंके रूपमें अंशिनी नित्यप्रियाओंकी प्रियसखी कहलाती हैं।

एव गौरवर्णाः। चम्पकलता वामा मध्या नीलवस्त्रा। चित्रा दक्षिणा मृद्वी नीलवसना। तुंगविद्या दक्षिणा प्रखरा शुक्लवस्त्रा च। श्यामला वाम्यदाक्षिण्ययुक्ता प्रखरा रक्तवस्त्रा। भद्रा दक्षिणा मृद्वी चित्रवसना। चन्द्रावली दक्षिणा मृद्वी नीलवस्त्रा। अस्याः सखी पद्मा दक्षिणा प्रखरा। शैव्या दक्षिणा मृद्वी। सर्व्वा एव रक्त वस्त्राः ॥३॥

नायिका स्वभाव

किरण-किञ्जल्क-वृत्ति—पूर्व वर्णित नायिकाओंमें से किसीका स्वभाव 'प्रखरा'[१] होता है जैसे—श्यामला और मंगला आदि, किसी-किसीका स्वभाव 'मध्या'[२] होता है, जैसे श्रीराधिका, पालि, आदि और कोई-कोई 'मृद्वी'[३] (मृदु स्वभाववाली) होती है, जैसे—चन्द्रावली आदि। तदनन्तर यूथेश्वरियोंके परस्पर भेदका वर्णन करते हैं। श्रीकृष्णकी प्रेयसियोंमें चार भेद हैं—स्वपक्ष, सुहृतपक्ष, तटस्थपक्ष और विपक्ष। ललिता-विशाखा, श्रीमती राधिकाजीकी 'स्वपक्षा' हैं, यूथेश्वरी श्यामला सखी श्रीमती राधिकाकी 'सुहृत पक्षा' हैं, भद्रा 'तटस्थ पक्षा' कहलाती हैं तथा श्रीमती चन्द्रावली श्रीमती राधिकाजीकी 'प्रतिपक्षा या विरुद्ध पक्षा'

---

१) **प्रखरा**—जो दम्भके साथ प्रखर वाक्योंका प्रयोग करती हैं और जिनके प्रखर वाक्योंका कोई खण्डन नहीं कर सकता, वे प्रखरा कहलाती हैं।

२) **मध्या**—दोनोंके बीच वाली, न अधिक प्रखरा और न अधिक मृदु।

३) **मृद्वी**—मृदुवचनका प्रयोग करनेवाली मृद्वी हैं।

हैं। इनमेंसे कोई वामा[१] और कोई दक्षिणा[२] स्वभावकी होती है।

श्रीमती राधिका वामा, मध्या, कभी नीला और कभी लाल लहंगा, कभी नीली और कभी लाल चुंदरी (उत्तरीय) धारण करनेवाली, समस्त गोपियोंमें कृष्णकी सर्वाधिक प्रियतमा हैं। वे सर्वशक्ति वरीयसी महाभावकी पराकाष्ठा स्वरूप श्रीकृष्णकी अभिन्न प्राणा हैं। श्रीललिता प्रखरा, मयूरपुच्छ जैसे विचित्र वसन परिधानकारिणी श्रीमती राधिकाकी प्रधान सखी हैं। श्रीविशाखा देवी वामा, मध्या, तारावलीयुक्त वस्त्र परिधान करनेवाली तथा रूप-गुण-आयु आदिमें श्रीमती राधिकाके समान हैं। इन्दुरेखा वामा, प्रखरा, अरुण वस्त्र धारण करने वाली हैं। रंगदेवी और सुदेवी—ये दोनों वामा, प्रखरा रक्तवस्त्र-धारिणी हैं। उपर्युक्त सभी नायिकाएँ गौरकान्ति विशिष्ट्या हैं। चम्पकलता वामा, मध्या और नीलवस्त्र धारण करनेवाली हैं। चित्रा दक्षिणा, मृद्वी और नीले वस्त्र परिधान करनेवाली हैं। तुंगविद्या दक्षिणा, प्रखरा और शुक्लवस्त्र धारण करनेवाली हैं। उक्त ललिता, विशाखा, चित्रा, चम्पकलता, इन्दुरेखा, रंगदेवी, सुदेवी और तुंगविद्या—ये श्रीमती राधिकाकी (स्वपक्षा) अष्ट सखियाँ कहलाती हैं। ये सभी

---

१) **वामा**—मान-ग्रहणमें सदा उत्सुक, मानकी शिथिलतामें कोपयुक्त, प्रायः नायकके द्वारा अभेद्या एवं नायकके प्रति क्रूरा नायिकाओंको रसशास्त्रमें 'वामा' कहते हैं।

२) **दक्षिणा**—नायकसे सरल-सीधा व्यवहार रखने वाली, मानके विषयमें अधिक कठोर नहीं होतीं, नायकके प्रति युक्तियुक्त वचन बोलने वाली तथा नायकके प्रशंसा-वाक्योंसे वशीभूत होनेवाली नायिकाओंको 'दक्षिणा' कहते हैं।

यूथेश्वरी होने पर भी श्रीमती राधिकाके निकट यूथेश्वरीका अभिमान परित्यागकर श्रीराधाकृष्ण युगलकी सेवा करनेवाली परमप्रेष्ठ सखी कहलाती हैं। श्यामला वामा, दाक्षिण्ययुक्ता, प्रखरा और रक्तवस्त्र धारण करनेवाली हैं। भद्रा दक्षिणा, मृद्वी विचित्र रंगका वस्त्र धारण करनेवाली हैं। चन्द्रावली दक्षिणा, मृद्वी, नीलवसना हैं। इनकी दो प्रधान सखियाँ पद्मा और शैव्या हैं। पद्मा दक्षिणा और प्रखरा हैं, शैव्या दक्षिणा और मृद्वी हैं, ये दोनों ही रक्त वस्त्र धारण करती हैं॥३॥

दूतीभेद

अथ दूती द्विविधा; स्वयं दूती आप्तदूती च। तत्राप्तदूती च त्रिविधा; अमितार्था निसृष्टार्था पत्रहारिणी च। वाक्यं विना इंगिते नैव या दौत्यं करोति सा अमितार्था। या आज्ञया समस्तं कार्यं करोति भारं वहति च सा निसृष्टार्था। या पत्रेण कार्यं करोति साधयति च सा पत्रहारिणी। ताः शिल्पकारिणी दैवज्ञा लिंगिनी परिचारिका धात्रेयी वनदेवी सखी चेत्यादयः। व्रजे वीरा, वृन्दा, वंशी च कृष्णस्य दूतीत्रयम्। प्रगल्भवचना वीरा वृन्दा च प्रियवादिनी, सर्व कार्यसाधिका वंशी॥४॥

दूतीभेद

किरण-किञ्जल्क-वृत्ति—शृंगार या मधुर रसमें दूतियाँ[१] दो प्रकारकी होती हैं—स्वयं दूती और आप्तदूती। आप्तदूती भी तीन प्रकारकी होती हैं—अमितार्था, निसृष्टार्था और पत्रहारिणी।

---

१) **दूती—**नायक और नायिकाके बीच सन्देश ले जाने व ले आनेवाली सखियोंको दूती कहते हैं। जब नायिका स्वयं किसी

जो केवल इंगितके द्वारा दौत्त्य कार्य करती हैं, वे अमितार्था हैं। जो निर्देश प्राप्त होने पर सभी कार्य करती हैं, राधाकृष्णको परस्पर मिलानेका भार भी ग्रहण करती हैं, वे निसृष्टार्था हैं। जो पत्रके द्वारा दूतीका कार्य करती हैं और नायक-नायिकाके मिलनेमें बाधक समस्याओंका भी समाधान करती हैं, वे पत्रहारिणी कहलाती हैं। ये दूतियाँ शिल्पकारिणी, दैवज्ञा, लिंगिनी, परिचारिका, धात्रेयी, वनदेवी और सखी प्रभृति हुआ करती हैं। (सर्वप्रकारके शिल्पकार्योंमें निपुण, सुन्दर-सुन्दर चित्रोंका अंकन करनेवाली दूतियाँ 'शिल्पकारिणी' कहलाती हैं। राशिफल और ज्योतिष विद्याके द्वारा गणना करनेवाली सखियाँ 'दैवज्ञा' कहलाती हैं। पौर्णमासीकी भाँति तापस वेश धारण करने वाली 'लिंगिनी' दूती कहलाती हैं। लवंग मञ्जरी, भानुमती कतिपय सखियाँ परिचारिका दूती कहलाती हैं। धात्री-कन्याएँ 'धात्रेयी' कहलाती हैं। वृन्दावनकी अधिष्ठात्री वृन्दादेवीको 'वनदेवी' कहते हैं। समयानुसार समस्त सखियाँ दूतीका कार्य करती है।) व्रजमें श्रीकृष्णकी तीन प्रसिद्ध दूतियाँ हैं—वीरा, वृन्दा और वंशी। वीरा 'प्रगल्भ वचनको बोलने वाली', वृन्दा 'प्रियवादिनी' और वंशी 'सर्वकार्य-साधिका' है॥४॥

सखीभेद

अथ सखी पंचविधा। सखी, नित्यसखी, प्राणसखी, प्रियसखी,

संकेतादिके द्वारा अपने नायकको मिलनेका दौत्य (संकेत) करती हैं, उन्हें स्वयं दूती कहते हैं। अपने अनुगत किसीके द्वारा दूतीका कार्य करानेपर, उसे आप्त दूती कहते हैं।

परमप्रेष्ठा सखी। एषां मध्ये काचित् समस्नेहा काचिदसमस्नेहा। या कृष्णे स्नेहाधिका सा सखी। वृन्दा, कुन्दलता, विद्या, धनिष्ठा, कुसुमिका तथा कामदा नामात्रेयी सखीभावविशेषभाक्। या राधिकायां स्नेहाधिका सा नित्यसखी। नित्यसख्यस्तु कस्तूरी मनोज्ञामणिमञ्जरी सिन्दूराचन्दनवती–कौमुदी–मदिरादयः। तत्र मुख्या या सखी स्नेहाधिका सा प्राणसखी उक्ता। जीवितसख्यस्तु तुलसी केलीकन्दली–कादम्बरी शशीमुखी–चन्द्ररेखा–प्रियम्वदा–मनोन्मदा–मधुमती–वासन्ती–कलभाषिणी–रत्नावली–मालती–कर्पूरलतिकादयः। एता वृन्दावनेश्वर्यां प्राय सारूप्य मागताः। मालती–चन्द्रलतिका–गुणचूड़ा–वरांगदा–माधवी–चन्द्रिका–प्रेममञ्जरी–तनुमध्यमा–कन्दर्पसुन्दरी –त्याद्याः कोटिसंख्या मृगीदृशः प्रियसख्यः। तत्र मुख्या या सा परमप्रेष्ठसखी। ललिता च विशाखा च चित्रा चम्पकवल्लिका। रंगदेवीसुदेवी च तुंगविद्येन्दुरेखिका। यद्यप्येताः समस्नेहास्तथापि श्रीराधायां पक्षपातं कुर्वन्ति॥५॥

सखीभेद

किरण–किञ्जल्क–वृत्ति—सखियाँ पाँच प्रकारकी होती हैं—सखी, नित्यसखी, प्राणसखी, प्रियसखी और परमप्रेष्ठसखी। इनमें कोई–कोई समस्नेहा और कोई–कोई विषमस्नेहा होती हैं। श्रीराधा और श्रीकृष्णमें समस्नेह रखनेवालीको समस्नेहा और किसी एकके प्रति अधिक स्नेह रखनेवाली विषमस्नेहा कहलाती हैं। कृष्णके प्रति अधिक स्नेह सम्पन्न सखियोंको 'सखी' कहते हैं। वृन्दा, कुन्दलता, विद्या, धनिष्ठा, कुसुमिका, कामदा, आत्रेयी आदि 'सखियाँ' हैं। श्रीमती राधिकाके प्रति अधिक स्नेह रखनेवाली सखियाँ 'नित्यसखियाँ' कहलाती हैं।

कस्तूरी, मनोज्ञा, मणिमञ्जरी, सिन्दूरा, चन्दनवती, कौमुदी और मदिरा प्रभृति नित्यसखी हैं।

उक्त नित्य सखियोंमें मुख्य सखियोंको 'प्राणसखी' कहते हैं। तुलसी, केलिकन्दली, कादम्बरी, शशिमुखी, चन्द्ररेखा, प्रियम्बदा, मदोन्मदा, मधुमती, बसन्ती, कलभाषिनी, रत्नावली, मालती, कर्पूरलतिका प्रभृति प्राणसखी हैं। ये सभी सखियाँ वृन्दावनेश्वरी श्रीमती राधिकाके समान ही रूपवती हैं। मालती, चन्द्रलतिका, गुणचूड़ा, वरांगदा, माधवी, चन्द्रिका, प्रेममञ्जरी, तनुमध्यमा, कन्दर्पसुन्दरी प्रभृति कोटि संख्यक व्रजसुन्दरियाँ 'प्रियसखी' हैं। इनमेंसे प्रधान-प्रधान सखियाँ 'परमप्रेष्ठ सखियाँ' हैं। ललिता, विशाखा, चित्रा, चम्पकलता, रंगदेवी, सुदेवी, तुंगविद्या एवं इन्दुरेखा ये श्रीश्रीराधा और श्रीकृष्णके प्रति समस्नेह सम्पन्न होने पर भी श्रीराधाके प्रति पक्षपात करती हैं॥५॥

वयः

अथ वयः। वयःसन्धिः नव्ययौवनं व्यक्तयौवनं पूर्णयौवनञ्चेति। कलावत्यादयो वयःसन्धौ स्थिताः। धन्यादयो नव्ययौवने स्थिताः। श्रीराधादयस्तु व्यक्तयौवने स्थिताः। चन्द्रावल्यादयः पूर्णयौवनेस्थिताः। पद्माद्याः पूर्णयौवने स्थिता इत्यालम्वनविभावः॥६॥

वय (उम्र) भेद

किरण-किञ्जल्क-वृत्ति—व्रजगोपियोंकी उम्र चार प्रकारकी होती है। वयःसन्धि, नव्ययौवन, व्यक्तयौवन एवं पूर्णयौवन। पौगण्ड और यौवनकी सन्धिको वयःसन्धि कहते हैं, इसे प्रथम कैशोर भी कहते हैं। कलावती प्रभृति नायिकागण वयःसन्धिमें अवस्थित हैं, धन्यादि नव्ययौवन सम्पन्न हैं, श्रीमतीराधिका

व्यक्तयौवन सम्पन्न हैं तथा चन्द्रावली, पद्मा आदि पूर्णयौवन वयसकी हैं॥६॥

उद्दीपन विभावः

अथोद्दीपनविभावः गुणनामताण्डववेणुवाद्यगोदोहनविभूषणगीतचरण-चिह्नाङ्गसौरभ्यनिर्माल्यवर्हगुञ्जावतंसकृष्णमेघचन्द्रदर्शनादिभेदाद् वहु-विधः॥७॥

उद्दीपन विभाव भेद

किरण-किञ्जल्क-वृत्ति—मधुर रसमें श्रीकृष्ण एवं कृष्ण-प्रियाओंके परस्पर भावोंकी उद्दीपना करानेवाले गुण, नाम, ताण्डव नृत्य, वेणुवादन, गोदोहन, गीत, चरणचिह्न, अंगसौरभ, निर्म्माल्य, मयूरपुच्छ, गुञ्जाहार, अवतंस (कानोंके आभूषण) कृष्णमेघ और चन्द्रदर्शन आदि बहुतसे उद्दीपन विभाव हैं। इसके अतिरिक्त यमुना, तटवर्ती कुञ्ज, शरद व वसन्त ऋतु, खगमृग, कोयलकी कूक, भ्रमरकी गुंजन, भूषण-ध्वनि, लगुड़ी, शृंगवाद्य, वृन्दावन, गोवर्धन, कदम्ब वृक्ष, तमाल इत्यादि और भी बहुतसे उद्दीपन विभाव है॥७॥

अनुभावाः

अथानुभावाः। भावः हावः हेला शोभा कान्तिः दीप्तिर्माधुर्य्यं प्रगल्भता औदार्य्यं धैर्य्यं लीला विलासो विच्छित्तिर्विभ्रमः किलकिंचितं मोट्टायितं कुट्टमितं विव्वोकं ललितं विकृतमिति विंशत्यलङ्काराः। तत्र निर्व्विकारात्मके चित्ते भावः प्रथमविक्रिया। तिर्य्यग् ग्रीवाभ्रूनेत्रादि-

विकाशसूच्यो हावः। कुचस्फुरणपुलकादिनीविवास स्खलनादिसूच्या हेला। रूपभोगाद्यैरंगविभूषणं शोभा। शोभैव यौवनोद्रेके कान्तिः। कान्तिरेव देशकालादिविशिष्टा दीप्तिः। नृत्यादिश्रम-जनितगात्रशैथिल्यं माधुर्यम्। सम्भोगवैपरीत्यं प्रगल्भता रोषेऽपिविनयव्यञ्जनमौदार्य्यम्। दुःखसम्भावनायामपि प्रेम्नि निष्ठा धैर्य्यम्। कान्तचेष्टानुकरणं लीला। प्रियसंगे सति मुखादीनां तात्कालिक-प्रफुल्लता विलासः। अल्पमात्राकल्पधारणेऽपि शोभा विच्छित्तिः। हारमाल्यादिस्थानविपर्य्ययो विभ्रमः। श्रीराधाकृष्णयोर्वर्त्मरोधनादौ अभिसारादावतिसम्भ्रमेण हारमाल्यादिस्थानविपर्य्ययो विभ्रमः। श्रीराधाकृष्णयोर्वर्त्मरोधनादौ गर्व्वाभिलाष-रुदित-स्मितासूयाभय-क्रूधा-सङ्करीकरणं हर्षादुच्यते किलकिंचितम्। कान्तवार्त्ताश्रवणे पूलकादिभिर-भिलाषस्य प्राकट्यं मोट्टायितम्। अधरखण्डनस्तनाकर्षणादौ आनन्देऽपि व्यथाप्रकटनं कुट्टमितं। वांछितेऽपि वस्तुनि गर्व्वेणानादरो विव्वोकः। भ्रूभंग्या अंगभंग्या च हस्तेन च भ्रमरविद्रवणादिचेष्टितं ललितम्। लज्जादिभिर्यत् निजकार्य्यं नोच्यते किन्तु चेष्टया व्यज्यते तत् विकृतम्। इति विंशत्यलङ्काराः। ज्ञातस्याप्यज्ञवत् प्रश्ने मौग्धाम्। प्रियस्याग्रे भ्रमरादिकं दृष्ट्वा भयं चकितम्। इति द्वयमधिकम्॥८॥

अनुभावोंका विवेचन

किरण-किञ्जल्क-वृत्ति—अनुभाव भी बहुत प्रकारके होते हैं। उनमेंसे भाव, हाव, हेला, शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य, धैर्य, लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिञ्चित, मोट्टायित, कुट्टमित, विव्वोक, ललित और विकृत—ये बीस अनुभाव 'अलंकार' कहलाते हैं।

निर्विकार चित्तमें सर्वप्रथम जो विकार परिलक्षित होता है,

उसे भाव कहते हैं। टेढ़ीगर्दन, तिरछी आँखोंसे देखना, भौंहों (भ्रू) का टेढ़ापन—इनसे जो भाव सूचित होता है, उसे हाव कहते हैं। कुचस्फुरण, पुलकित होना, नीवि-बन्धन और परिधेय वस्त्र स्खलन होने पर उसे हेला समझना चाहिए। रूप-सौन्दर्य एवं सम्भोगादिके द्वारा विभूषित होनेको शोभा कहते हैं। यौवनके उभरने पर जो अंगकी शोभा होती है, उसे कान्ति कहते हैं। देशकाल आदिके द्वारा अत्यधिक रूपमें बढ़ी हुई कान्तिको दीप्ति कहते हैं। नृत्यादि परिश्रम हेतु शरीरकी शिथिलताका नाम माधुर्य है। विपरीत सम्भोगको प्रगल्भता कहते हैं। रोषके समय विनय प्रकाश करनेको औदार्य कहते हैं। दुःख प्राप्तिकी सम्भावना रहने पर भी प्रेमनिष्ठाकी विद्यमानताको धैर्य कहते हैं। नायककी चेष्टाओंका अनुकरण करनेका नाम लीला है। प्रियतम नायकके साथ मिलने पर मुख-मण्डलका खिल उठना ही विलास कहलाता है। स्वल्प वेशभूषा धारणसे भी सौन्दर्य बढ़ जाता है, तब उसे विच्छित्ति कहते हैं। अभिसारादिके समय अत्यन्त हड़बड़ाहट (सम्भ्रम) हार और मालादिका स्थान विपर्यय होनेपर, उसे विभ्रम कहते हैं। श्रीराधाकृष्णकी पथ-अवरोध लीलाके समय हर्षसे उत्पन्न गर्व, अभिलाष, रोदन, हास्य, असूया, भय और क्रोध जब सभी एक साथमें उदित हों तो उसे किलकिञ्जित कहते हैं। कान्तके सम्वाद श्रवणसे रोमाञ्चके द्वारा हृदयस्थ अभिलाषा प्रकट करनेका नाम मोट्टायित है। अधर-खण्डन और स्तनाकर्षणादिसे आनन्द होने पर भी बाहरसे व्यथा प्रकाश करनेको कुट्टमित कहते हैं। गर्वके कारण मनोवाञ्छित वस्तुमें भी अनादर प्रदर्शनका नाम विव्वोक है। भ्रूभंगी, अंगभंगी तथा हस्त द्वारा

भ्रमरको दूर भगानेकी चेष्टाको ललित कहते हैं। अपने किये हुए कर्मको लज्जावशतः मुखसे न बोलकर चेष्टाके द्वारा उसे प्रकाश करनेको विकृत कहते हैं। ये बीस प्रकारके अलंकार हैं।

इनके अतिरिक्त और भी समजातीय दो अनुभाव हैं—मौग्ध्य और चकित। किसी विषयको जानकर भी अज्ञकी भाँति प्रश्न करनेको मौग्ध्य कहते हैं। प्रियतमके सम्मुख भ्रमर आदिको देखकर भयभीत होनेका नाम चकित है॥८॥

अथान्ये अनुभावाः। नीव्युत्तरीयधम्मिल्यस्रंसनं गात्रमोटनं जृम्भा घ्राणस्य फुल्लत्वं निश्वासाद्याश्च ते मताः॥९॥

किरण-किञ्जल्क-वृत्ति—उपर्युक्त अनुभावोंके अतिरिक्त भी कुछ अनुभाव हैं, जो इस प्रकार हैं—नीवि, उत्तरीय, केश-बन्धनका शिथिल होना, अंगड़ाई लेना, जंभाई आना, नासिकाका प्रफुल्ल होना, दीर्घनिःश्वास इत्यादि॥९॥

सात्त्विकाः

अथ सात्त्विकाः। स्वेदस्तम्भादयोऽष्ट धूमायित-ज्वलित-दीप्त-सूद्दीप्ताः॥१०॥

सात्त्विक

किरण-किञ्जल्क-वृत्ति—मधुर रसमें भी पूर्वोक्त स्तम्भ (जड़ता), स्वेद (पसीना), रोमाञ्च, स्वरभंग, कम्प, वैवर्ण, अश्रु और प्रलय (सुषुप्ति दशा)—ये आठों सात्त्विक भाव उत्तरोत्तर धुमायित, ज्वलित, दीप्त और सुद्दीप्त, इन चारों अवस्थाओंमें लक्षित होते हैं॥१०॥

व्यभिचारिणः

अथ व्यभिचारिणः। निर्व्वेदविषादाद्या भावाः॥११॥

व्यभिचारीभाव

किरण-किञ्जल्क-वृत्ति—पूर्वोक्त निर्वेद, विषाद आदि तैंतीस प्रकारके व्यभिचारी भावसमूह इस मधुर रसमें कुछ और भी चमत्कारिकताके साथ उदित होते हैं॥११॥

भावोत्पत्तिः

अत्र भावोत्पत्तिः भावसन्धिः भावशावल्यो भावशान्तिरिति दशाचतुष्टयम्। भावोत्पत्ति स्पष्टार्था; भावद्वयस्य मिलनं भावसन्धिः, पूर्व्व पूर्व्वभावस्य यः परपरभावेनोपमर्द्दः स एव भावशावल्यं; भावशान्ति र्भावस्यान्तर्द्धानमेव॥१२॥

भावोत्पत्त्यादि

किरण-किञ्जल्क-वृत्ति—अनन्तर भावोत्पत्ति, भावसन्धि, भाव-शावल्य और भाव शान्तिके भेदसे चार प्रकारकी दशाएँ होती हैं। हृदयमें भाव-उन्मेष होने पर भावोत्पत्ति है। दो भावोंके परस्पर मिलनेका नाम भावसन्धि है। पहलेके भाव जब बादमें उदित होने वाले भावोंके द्वारा उपमर्दित अर्थात् दबा दिये जाते हैं, तो उसे भाव-शावल्य कहा जाता है। भावके अन्तर्धान होनेका नाम भाव-शान्ति है॥१२॥

(एक समान अथवा भिन्न-भिन्न प्रकारके दो भावोंके मिलनेको भावसन्धि कहते हैं। जैसे—इष्ट प्राप्तिसे उत्पन्न जड़ता

और अनिष्ट प्राप्तिसे उत्पन्न जड़ता—एक ही समय उदित होना 'समान रूप भावसन्धि' का उदाहरण है। हर्ष और आशंकाका एक साथ उदित होना 'भिन्नरूप भावसन्धि' का उदाहरण है। "हाय रे विधाता! चन्द्रवदन श्रीकृष्णको आलिंगन करनेके लिए चित्त उत्कण्ठित हो रहा है, किन्तु तुमने गरल रूप मानकी रचना क्यों की? तुम्हें शत-शत बार धिक्कार है।" यहाँ पर पहले उत्सुकता और बादमें उसके उपमर्दक अमर्षके द्वारा उत्सुकताका उपमर्दन ही भाव-शाबल्य है। कोई गोपी मानिनी होने पर किसी प्रकार उसका मान प्रसाधन न होते देख, कृष्णने मधुर वंशीध्वनि की। वंशीकी ध्वनि सुनते ही उसका मान दूर हो गया। यहाँ वंशीध्वनिके द्वारा पूर्वोदित मानका दूर होना ही भावशान्ति है।)

रतिभेद

अथ स्थायी भावः; मधुरा रतिः। सा च त्रिविधा; साधारणी, समंजसा, समर्था इति। कुब्जायां साधारणी साधारणमणिवत्। पट्टमहि षीषु समञ्जसा चिन्तामणिवत्। ब्रजदेवीषु समर्था कौस्तुभमणिवत्। सामान्यभावेन स्वसुखतात्पर्य्यरतिः साधारणी। कृष्णस्य निजस्य च सुखतात्पर्य्यरतिः पत्नीभावमयी समञ्जसा। केवल कृष्णसुखतात्पर्य्यरतिः पराङ्गनामयी समर्था॥१३॥

रतिभेद

किरण-किञ्जल्क-वृत्ति—उज्ज्वल रसमें 'मधुरा-रति' स्थायी भाव है। यह मधुर रति भी तीन प्रकारकी होती है—साधारणी, समञ्जसा और समर्था। कुब्जामें साधारणी मधुर रति होती है,

यह साधारण मणिकी भाँति दुष्प्राप्य है। द्वारकाकी श्रीरुक्मिणी, श्रीसत्यभामा आदि पटरानियोंमें 'समञ्जसा' मधुर रति होती है। यह चिन्तामणिके समान होती है। केवल व्रजदेवियोंमें 'समर्था' मधुरारति होती है, यह कौस्तुभमणिके समान है। साधारण भावसे—निजसुख तात्पर्यमयी रति 'साधारणी' रति है। श्रीकृष्ण और अपना दोनोंके सुख तात्पर्ययुक्त पत्नी भावमयी रति 'समञ्जसा' कहलाती है और केवल कृष्ण-सुख-तात्पर्य-विशिष्ट्य-परकीयाभावमयी गोपांगनाओंकी रति 'समर्थारति' कहलाती है॥१३॥

समर्था रति

अथ समर्था। प्रथमदशायां रतिर्बीजवत्, प्रेमा ईक्षुवत्, स्नेहो रसवत्, ततो मानं गुड़वत्, ततः प्रणयः खण्डवत् ततो रागः शर्करावत्, ततोऽनुरागः सितावत् ततो महाभावः सितोपलवत्। अथ प्रेमा। तत्र पूर्व्वसंस्कारतो वा श्रवणदर्शनादिभ्यो वा कृष्णे प्रीत्या मनोलग्नता रतिः। विघन्सम्भवेऽपि ह्रासाभावः प्रेमा। चित्तस्य द्रवीभावनिदानं स्नेहः। तत्र चन्द्रावल्यादौ तदीयताभावेन घृतस्नेहश्च आदरमयो भावान्तरमिश्रित एव सुरसो यथा घृतम; श्रीराधादौ मदीयताभावेन मधुस्नेह आदरशून्यः स्वत एव सुरसो यथा मधु। **अथ मानः।** स्नेहाधिक्येन भ्रदाभ्रदहेतुना वा रोषेण वा हेतुना विनैव वा कौटिल्यं मानः। चन्द्रावल्यादौ दाक्षिण्योदात्तः क्वचिद्वाम्यगन्धोदात्तः, श्रीराधादौ तु ललितः। **अथ प्रणयः।** मनोदेहेन्द्रियैरैक्यभावनामयो विश्रम्भः प्रणयः; सख्यं मैत्रञ्च। **अथ रागः।** चन्द्रावल्याद्यौ नीलरागः स्वलग्नभावावरणः। तत्रैव श्यामरागोऽपि प्रायो भद्रादौ चिरसाध्यरूपः। श्रीराधादौ तु मञ्जिष्ठारागोऽनन्यापेक्षो

भावावरणशुन्यः। तथैव श्यामलादौ कुसुम्भरागः सुखसाध्यत्वात् किञ्चिदन्यापेक्षः। पात्रस्याद्गुणयात् स्थितिः। **अथानुरागः।** श्रीकृष्णः सदानुभूयते अथच नवनवापूर्व इव बुद्धिर्यतो भवति सः अनुरागः। तत्र चाप्राणिन्यपि जन्मलालसा प्रेमवैचित्र्यं विच्छेदेऽपि स्फूर्त्तिरित्यादिक्रियाः। **अथ महाभावः।** स एव रूढ़ अधिरूढ़ इति द्विविधः। कृष्णस्य सुखेऽपि पीड़ाशङ्कया खिन्नत्वं निमिषस्यापि असहिष्णुतादिकं यत्र स रूढ़ो महाभावः। कोटिब्रह्माण्डगतं समस्तसुखं यस्य सुखस्य लेशोऽपि न भवति समस्तवृश्चिक-सर्पादिदंशकृत-दुःखमपि यस्य दुःखस्य लेशो न भवति एवम्भूते कृष्णसंयोगवियोगयोः सुख-दुःखे यतो भवतः सोऽधिरूढ़ो महाभावः। अधिरूढ़स्यैव **मोदनो मादन** इति द्वौ रूपौ भवतः। यस्य उदये कृष्णस्य तत्प्रेयसीनां महाक्षोभश्चमत्कारो भवेत्, सूदीप्तसात्त्विक-विकारदर्शनात् स **मोदनः**। स तु राधिकायूथ एव भवति नान्यत्र। मोदनोऽयं प्रविश्लेषदशायां मोहनो भवेत्। यस्य उदये सति पट्टमहिषीगणालिङ्गितस्यापि श्रीकृष्णस्य मूर्च्छा भवति राधा-विरहतापेन, ब्रह्माण्डक्षोभकारित्वं तिरश्चामपि रोदनञ्च। प्रायो वृन्दावनेश्वर्य्यां मोहऽयमुदञ्चति। मोहनस्य एव वृत्तिभेदो **दिव्योन्मादः।** यत्र उद्घूर्णाचित्रजल्पादयः प्रेममय्योऽवस्थाः सन्ति यत्रानन्तभावोद्गमः वनमालायामपि ईर्षा, पुलिन्देष्वपि श्लाघा, तमालस्पर्शिन्या मालत्या भाग्यवर्णनञ्च। एष एव **मादनः** सर्व्वश्रेष्ठः श्रीराधायामेव नान्यत्र॥१४॥

समर्थारति

किरण-किञ्जल्क-वृत्ति—तत्पश्चात् समर्था रतिकी क्रमशः परिपक्वावस्थाओंका वर्णन किया जा रहा है। समर्था रतिकी प्रथमावस्थामें 'रति' बीज-स्वरूप होती है। प्रेम गत्रेकी भाँति,

स्नेह गन्नेके रसके समान, उसके पश्चात् मान गुड़की भाँति, अनन्तर प्रणय खांडके समान होता है। उसके बाद राग चीनीके समान, अनुराग मिश्रीकी भाँति और उसके भी पश्चात् महाभाव सितोपलकी भाँति होता है। जैसे—गन्नेका रस ही परिपक्वावस्थामें क्रमशः गुड़, खांड, चीनी, मिश्री और सितोपल नाम ग्रहण करता है। उसी प्रकार बीज-स्वरूप 'रति' प्रेम होकर वृद्धि क्रमसे क्रमशः स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग और भाव नाम धारण करती है।

रति—पूर्व संस्कारवश अथवा श्रवणादिसे उत्पन्न प्रीतिवश कृष्णमें मनोनिवेश होनेका नाम 'रति' है।

प्रेम—विघ्न उपस्थित होने पर भी जब इस रतिका ह्रास नहीं होता, तब वह परिपक्व रति प्रेम नाम धारण करती है।

स्नेह—प्रेम भी परिपक्व होने पर जब चित्तको द्रवित करने लगता है, तब वही स्नेह कहलाता है। यह स्नेह दो प्रकारका होता है—घृतस्नेह और मधुस्नेह। 'मैं कृष्णकी हूँ' ऐसे भावको 'तदीयता' भाव कहते हैं। ऐसे तदीयता-भावमय स्नेहको घृतस्नेह कहते हैं। आदरमय भावान्तर मिश्रित होनेसे ही स्नेह सुरस होता है। जैसे घृत सुरस और सुस्वादु होनेपर यदि उसमें शर्करा आदि अन्य किसी मीठी वस्तुका संयोग कर दिया जाय, तो वह और भी परम सुस्वादपूर्ण बन जाता है। श्रीमती चन्द्रावली आदि सखियोंमें घृतस्नेह होता है। श्रीमती राधिका और उनकी स्वपक्षा सखियोंमें मदीयता-भावमय मधुस्नेह होता है। 'श्रीकृष्ण मेरे हैं' ऐसे भावको 'मदीयता' कहते हैं। जैसे मधु बिना किसी दूसरी वस्तुके संयोगसे भी स्वभावतः परम आस्वादनीय और सुस्वादु होता है, उसी प्रकार श्रीमती

राधिकाका स्नेह भी किसी अन्य भावकी अपेक्षा न रखकर स्वयं ही परमास्वाद्य है। अतः इसे 'मधुस्नेह' कहते हैं।

मान—जो स्नेह उत्कर्षता प्राप्तकर श्रीयुगलको अभिनव माधुर्य्यका अनुभव कराता है एवं स्वयं बाहरमें कौटिल्य रूप धारण करता है, उसे मान कहते हैं। स्नेहाधिक्यवश किसी उचित या अनुचित कारणसे अथवा स्नेहजनित कोपवशतः अथवा बिना कारण ही यह मान उदित होता है। मान दो प्रकारके होते हैं—उदात्त और ललित। उदात्तमान भी दो प्रकारके होते हैं। जब घृतस्नेह बाहरमें दाक्षिण्य और अन्तरमें वाम्यभाव लेकर एक सुदुर्बोध परिपाटी लाभ करता है, उसे 'दाक्षिण्योदात्तमान' कहते हैं। और जब वह घृतस्नेह वाम्यगन्धयुक्त मनका भाव छिपाकर गम्भीर और सुदुर्बोध अवस्थको प्राप्त करता है, तब उसे वाम्यगन्धोदात्तमान कहते हैं। श्रीचन्द्रावली और उनकी सखियोंमें ये दोनों प्रकारके मान होते हैं; किन्तु सरल स्वभावतः घृतस्नेहा नायिकाओंमें वाम्यभावका उदय कहीं-कहीं देखनेको मिलता है। ललित मान भी दो प्रकारका होता है। जब मधुस्नेह उद्रेक स्वभावके कारण अतिशय मधुर कौटिल्य रूप धारण करता हैं, उसे कौटिल्य ललित मान कहते हैं। नर्म विशेष (परिहासयुक्त) अत्यन्त मधु मान ही 'नर्मललित' मान कहलाता है। ये दोनों प्रकारके मान श्रीमती राधिका और उनकी सखियोंमें दृष्टिगोचर होते हैं।

प्रणय—मानकी परिपक्व या उन्नत अवस्थामें प्रियजनके देह, मन और इन्द्रियोंके साथ अपनी देह, मन आदिकी ऐक्य भावनारूप विश्वासका नाम 'प्रणय' है। यह दो प्रकारका होता है—सख्य और मैत्र्य।

राग—प्रणयोत्कर्ष हेतु कृष्ण-सम्बन्धी दुःख भी सुख जैसा अनुभूत होने पर, उसे 'राग' कहते हैं। राग दो प्रकारका होता है—नीलिमा और रक्तिमा। जिस रागके ह्रास होनेकी सम्भावना नहीं होती, जो बाहरमें अतिशय प्रकाशमान होकर संलग्न भावोंका आवरण करता है, उसे नीलि राग कहते हैं। यह नीलिराग चन्द्रावली आदिमें होता है। यह नीलिराग जब विलम्बसे साध्य होता है, तब उसे श्याम राग कहते हैं। भद्रा प्रभृतिमें यह श्यामराग होता है। रक्तिमा राग भी दो प्रकारका होता है—कुसुम्भ और मञ्जिष्ठा। श्रीमती राधिका आदिमें मञ्जिष्ठा राग होता है यह निरपेक्ष और भावावरणशून्य होता है। श्यामला आदिमें कुसुम्भ राग होता है। जो राग अन्य रागकी कान्तिको प्रकाश कर स्वयं चित्तमें संशक्त होकर शोभा पाता है, वह कुसुम्भ राग है। आधार विशेषमें कुसुम्भ राग स्थिर भी होता है। पात्रोंके गुणके अनुसार रागकी ये विभिन्न स्थितियाँ होती हैं।

अनुराग—राग और भी उत्कर्षावस्थाको प्राप्त होकर सर्वदा अनुभूत प्रियजनमें भी (नायक और नायिकामें) अननुभूतकी भाँति क्षण-क्षणमें नवनवायमान प्रतीत होता है, उसे अनुराग कहते हैं। अनुराग होने पर श्रीकृष्ण-सम्बन्धित अप्राणियोंमें भी जन्म प्राप्तिकी अभिलाषा, प्रेमवैचित्र्य और विच्छेदमें भी श्रीकृष्णकी स्फूर्ति आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं।

महाभाव—अनुराग ही चरमावस्थामें यावदाश्रयवृत्तिके रूपमें स्वयं वेद्यदशाको प्राप्त होकर प्रकाशित होने पर 'महाभाव' कहलाता है। उदाहरणके साथ इस गम्भीर विषयको इस प्रकार समझना चाहिए—श्रीमती राधिका अनुरागकी आश्रय हैं एवं

श्रीकृष्ण उसके विषय हैं। श्रीनन्दनन्दन ही मूर्त्तिमान शृंगारके रूपमें विषय तत्त्वकी चरमसीमा हैं। श्रीराधिका भी आश्रय तत्त्वकी चरमसीमा हैं। इनका अनुराग ही स्थायीभाव है। यही अनुराग अपनी चरमसीमाको प्राप्त होने पर यावदाश्रयवृत्ति कहलाता है। और उसी अवस्थामें स्वयं वेद्यदशा अर्थात् तत्प्रेयसीजन विशेषके द्वारा ही संवेद्य दशा प्राप्त होकर यथा समय सुद्दीप्त आदि सात्त्विक भावोंके द्वारा प्रकाशित होता है। इस अवस्थाको प्राप्त अनुराग ही महाभाव है।

महाभाव रूढ़ और अधिरूढ़के भेदसे दो प्रकारका होता है। श्रीकृष्णके सुखमें भी पीड़ाकी आशंकासे खिन्नता उपस्थित होती है, श्रीकृष्णके दर्शनमें क्षणभरका विलम्ब भी सहन नहीं होता अथवा पलभर समय सह्य नहीं होता। ऐसी अवस्था वाले महाभावको रूढ़ महाभाव कहते हैं। जिस भावके उदित होनेसे करोड़ों-करोड़ों ब्रह्माण्डोंके सम्पूर्ण सुख मिलकर भी कृष्ण-संयोग-जनित सुखके लेशमात्रके बराबर भी नहीं होते और कोटि-कोटि ब्रह्माण्डके सांप-बिच्छू आदिके दंशन-जनित-दुःख भी कृष्ण-वियोग-जनित दुःखके लेशमात्रके बराबर भी नहीं होते। इस प्रकार कृष्णके संयोग और वियोगके सुख और दुःख जिससे अनुभूत होते हैं, उसका नाम अधिरूढ़ महाभाव है। यह अधिरूढ़ महाभाव भी मोहन और मोदन दो प्रकारका होता है। जिस भावके आविर्भावमें सुद्दीप्त सात्त्विक विकार दर्शनसे श्रीकृष्ण और उनकी प्रेयसीवर्गको भी अत्यन्त आश्चर्य एवं महाक्षोभ उपस्थित होता है, उसे मोदन कहते हैं। यह मोदन केवल श्रीमती राधिकाके यूथमें ही विद्यमान होता है, कहीं अन्यत्र नहीं होता। मोदन ही विरह अवस्थामें 'मोहन' कहलाता

है। जिस भावके उदय होनेसे राधा-विरह-जनित तापसे सत्यभामादि महिषियोंके द्वारा आलिगिंत होने पर भी कृष्ण मूर्च्छित हो जाते हैं—जिस भावके प्रभावसे ब्रह्माण्ड क्षोभकारिता तथा पशु-पक्षियोंका रोदन भी उपस्थित हो जाता है, उसे मोहन कहते हैं। अर्थात् मोहन-भावयुक्त प्रेयसीका वैसा विरह भाव देखकर ब्रह्माण्डके सभी लोग क्षुब्ध हो जाते हैं, पशु-पक्षी भी रोदन करने लगते हैं। यहाँ तक कि द्वारकेश कृष्ण भी पट्ट महिषियोंके द्वारा आलिंगित होने पर भी श्रीमती राधिकाकी मोहन अवस्थाका श्रवण कर मूर्च्छित हो जाते हैं। यह मोहन भाव श्रीमती राधिकाजीके यूथकी सखियोंमें उदित होने पर भी अधिकतर राधाजीमें ही उदित होता है। मोहनकी एक वृत्ति दिव्योन्माद कहलाती है। दिव्योन्माद[१]में उद्घूर्णा, चित्रजल्प[२] आदि प्रेममयी अवस्थाएँ उदित होती हैं।

---

१) **दिव्योन्माद**—मोहन भावकी एक अनिर्वचनीय वृत्ति—अद्भुत भ्रान्ति जैसी (स्फूर्ति स्वरूपा) वैचित्रीका नाम दिव्योन्माद है। यह उद्घूर्णा और चित्रजल्प आदि अनेक रूपोंमें प्रकाशित होती है। विविध प्रकारकी विलक्षण विवशतामय चेष्टाओंको **उद्घूर्णा** कहते हैं। जैसे—माथुर विरहकातर श्रीमती राधिकाका वासकसज्जाकी भाँति कुञ्जभवनमें सज्जा रचना, किसी खण्डिता भावसे अति कुपित होकर नीलमेघको फटकारना आदि।

२) **चित्रजल्प**—विरह दशामें प्रियतमके किसी सुहृद् या दूतको देखकर अवहित्था अवलम्बन पूर्वक हृदयमें छिपे हुए कोपको प्रकाशित करना 'चित्रजल्प' कहलाता है। चित्रजल्प दस प्रकारके होते हैं—प्रजल्प, परिजल्प, विजल्प, उज्जल्प, संजल्प, अवजल्प,

उक्त मोहन भावसे भी अति उत्कृष्ट चमत्कारपूर्ण जो ह्लादिनी नामक महाशक्तिका स्थिर अंश है, जो केवल श्रीमती राधिकामें ही सदैव विराजमान रहता है, उसको 'मादन महाभाव' कहते हैं। यह अनिर्वचनीय विलक्षण मादनाख्य महाभाव सम्भोग कालमें ही उदित होता है, वियोग कालमें नहीं। इस मादनाख्य महाभावमें अनन्त प्रकारके भावोंका उद्‌गम होता है, वनमालाके प्रति भी ईर्ष्या होती है, अस्पृश्य पुलिन्द कन्याओंके रूपमें जन्म ग्रहणकी इच्छा होती है, तमाल वृक्षका स्पर्श करनेवाली मालती लताकी भी सराहना देखी जाती है। महाभावकी यही सर्वश्रेष्ठ एवं असमोर्द्ध सीमा है। यह मादनाख्य महाभाव श्रीमती राधिकाजीको छोड़कर उनकी परमप्रेष्ठ ललितादि सखियोंमें भी उदित नहीं होता॥१४॥

आश्रयनिर्णयः

अथैषामाश्रयनिर्णयः। कुब्जायां साधारणी रतिः प्रेमपर्य्यन्ता। पट्टमहिषीषु समञ्जसा रतिः अनुरागपर्य्यन्ता। तत्र सत्यभामा राधिकानुसारिणी; लक्षणा च। रुक्मिणी तु चन्द्रावलीभावानुसारिणी; अन्याश्च। व्रजस्थप्रियनर्मसखानां च अनुरागपर्य्यन्ता। व्रजसुन्दरीणां तु समर्था रतिः महाभावपर्य्यन्ता; सुवलादीनाञ्च। तत्रापि अधिरूढ़ः राधिकायूथ एव नान्यत्र। तत्रापि मोहनः श्रीराधायामेव; ललिता-विशाखयोरपि। मादनस्तु राधायामेवः॥१५॥

अभिजल्प, आजल्प, प्रतिजल्प और सुजल्प। श्रीमद्‌भागवत दशमस्कन्धके भ्रमरगीतमें दसों प्रकारके चित्रजल्पोंका सरस वर्णन है।

किरण-किञ्जल्क-वृत्ति—कुब्जामें साधारण-रति प्रेम अवस्था तक होती है। द्वारकाकी पटरानियोंमें समञ्जसा-रति अनुराग पर्यन्त होती है। उनमें से सत्यभामा एवं लक्षणा रूप, गुण, वाम्यभाव आदिकी दृष्टिसे कुछ-कुछ श्रीमती राधिकाके अनुरूप हैं। उसी प्रकार रुक्मिणी और दूसरी महिषियाँ रूप, गुण, स्वभाव आदिकी दृष्टिसे कुछ-कुछ चन्द्रावलीके अनुरूप हैं। व्रजस्थित प्रियनर्मसखाओंके प्रेमकी गति अनुराग तक होती है। व्रजसुन्दरियोंकी समर्था रतिकी चरमावस्था महाभाव पर्यन्त होती है। सुबलादि सखाओंका प्रेम महाभाव तक होता है। अधिरूढ़ भाव केवल-मात्र श्रीमती राधिकाके यूथमें ही प्रकाशित होता है। 'मोहन महाभाव' श्रीमती राधिका, ललिता, विशाखामें विद्यमान होता है, किन्तु मादन महाभाव केवलमात्र श्रीराधामें ही सदैव विराजमान रहता है॥१५॥

स्थायी भाव

स्थायी भावः। स एवः विप्रलम्भः सम्भोगश्चेति द्विविधः। तत्र विप्रलम्भश्चतुर्विधः, पूर्व्वरागः मानः प्रेमवैचित्र्यं प्रवासश्च। अङ्गसंगात् पूर्व्वं या उत्कण्ठामयी रतिः सः पूर्व्वरागः। तत्र दशदशा। लालसोद्वेगजागर्य्या तानवं जड़िमात्र तु। वैयग्र्यं व्याधिरुन्मादो मोहोमृत्युर्दशा दश। मानः द्विविधः। सहेतुर्निर्हेतुश्च। तत्र निर्हेतुकः स्वयमेव शाम्यति। सहेतुकस्य मानस्य शान्तिः सामभेदक्रिया-दाननत्युपेक्षारसान्तरैः। प्रियवाक्यं साम। निजैश्वर्यं श्रावयित्वा तस्या अयोग्यत्वज्ञापनं भेदः। वयस्यादिद्वारा भयप्रदर्शनञ्च क्रिया। वस्त्रमाल्यादीनां प्रदानं दानम्। नतिर्नमस्कारः। उपेक्षा औदासीन्य-

प्रकट्नम। रसान्तरं भयकष्टादिप्रदानादिप्रस्तावः मानशान्तिचिह्नानि अश्रुस्मितादयः। अथ प्रेमवैचित्यम्। कृष्णनिकटेऽपि अनुरागाधिक्यात् विरहो यत्र भवति तदेव तत्। अथ प्रवासः। स द्विविधः किञ्चिद्दूरनिष्ठ सुदूरनिष्ठश्च। नित्यमेव गोचारणाद्यनुरोधात् किञ्चिद्दूरे मथुरां गते सति सुदूरे। तत्र च दश दशा अतिप्रवला भवन्ति। अथ सम्भोगः। स च चतुर्विधः। पूर्व्वरागान्ते चाधरनखक्षतादीनाम् अल्पत्वे संक्षिप्तो, मानान्ते असूयामात्सर्य्यादि-रोषाभास-मिश्रितः संकीर्णः किञ्चिद्दूरप्रवासान्ते सम्पूर्णः स्पष्टः, सुदूरप्रवासान्ते समृद्धिमान् अतिस्पष्टः। अथ सम्भोगप्रपञ्चः। दर्शन-स्पर्शन-कथन-वर्त्मरोध-वनविहार-जलकेलि-वंशीचौर्य्य-नौकाखेला-दान-लीला-लुक्कायन-लीला-मधुपानादयः अनन्ता एव॥१६॥

अनधीतव्याकरणश्चरणप्रवणो हरेर्जनो यः स्यात्।
उज्ज्वलनीलमणिकिरणस्तदालोकाय भवतु॥
इति महामहोपाध्याय-श्रीविश्वनाथ-चक्रवर्त्ति-विरचितः
उज्ज्वलनीलमणिकिरणः समाप्तः॥

स्थायी भावः

किरण-किञ्जल्क-वृत्ति—स्थायीभाव दो प्रकारके होते हैं—विप्रलम्भ (वियोग) और सम्भोग (मिलन)। इनमेंसे विप्रलम्भ चार प्रकारका होता है—पूर्वराग, मान, प्रेमवैचित्त्य और प्रवास। मिलनसे पूर्व उत्कण्ठामयी रतिको 'पूर्वराग' कहते हैं। इसमें दस दशाएँ उदित होती हैं—लालसा, उद्वेग, जागरण, कृशता, जड़ता,

व्यग्रता, व्याधि, उन्माद, मोह और मृत्यु। मान दो प्रकारका होता है—सहेतुक (किसी हेतुसे उत्पन्न) एवं निर्हेतुक (बिना हेतुसे उत्पन्न)। उनमेंसे निर्हेतुक मान जैसे बिना हेतुके उत्पन्न होता है, उसी प्रकार अपने-आप शान्त हो जाता है। सहेतुक मान साम, भेद, क्रिया, दान, नति, उपेक्षा और रसान्तर द्वारा शान्त होता है। प्रिय वचनोंका नाम 'साम' है। अपना ऐश्वर्य दिखलाकर नायिकाकी अयोग्यता प्रदर्शन करनेका नाम 'भेद' है। सखा या सखियोंके द्वारा भय प्रदर्शनको 'क्रिया' कहते हैं। वस्त्र, माल्यादि प्रदान करनेका नाम 'दान' है। नमस्कार करना या अधीनता स्वीकार करनेका नाम 'नति' है। उदासीन होनेका नाम 'उपेक्षा' है। भय, कष्ट आदि प्रदान करनेका प्रस्ताव 'रसान्तर' कहलाता है। आँखोंमें अश्रु, उद्‌गम, स्मित हास्यादि मानशान्तिके लक्षण हैं।

अनन्तर प्रेम वैचित्त्यका वर्णन किया जा रहा है। प्रियतम-कृष्ण निकट रहने पर भी अनुरागकी अधिकतासे (कृष्ण निकट नहीं हैं इस बुद्धिसे) जो विरह होता है, उसे प्रेमवैचित्त्य कहते हैं। प्रेमवैचित्त्य संयोगावस्थामें ही होता है, किन्तु दिव्योन्माद, चित्रजल्प, उद्‌घूर्णा आदि वियोगमें उदित होते हैं। (यह साधारण नियम होने पर भी 'मादन' की अवस्थामें इन सभी भावोंका उदय हो सकता है)

प्रवास दो प्रकारके होते हैं—किञ्चिद्दूरनिष्ठ एवं सुदूरनिष्ठ। गोचारणादिके लिए कृष्ण प्रतिदिन किञ्चित् दूर गमन करते हैं, इसे किञ्चिद्दूरनिष्ठ प्रवास कहते हैं। कृष्णके मथुरा जानेपर दूरनिष्ठप्रवास होता है। इसमें उपर्युक्त दसों-दशायें अत्यन्त प्रबल रूपमें आविर्भूत होती हैं।

सम्भोग भी चार प्रकारका होता है—पूर्वरागके पश्चात् जो सम्भोग, अधर-नख-क्षत आदिके रूपमें अल्पमात्रामें होता है, उसे 'संक्षिप्त सम्भोग' कहते हैं। मानके पश्चात् जो सम्भोग असूया-मात्सर्यादि रोष भावके साथ मिश्रित रहता है, उसे 'संकीर्ण-संभोग' कहते हैं। किञ्चित् दूरगत प्रवासके पश्चात् जो स्पष्ट सम्भोग होता है, वह 'सम्पूर्ण सम्भोग' कहलाता है और सुदूर प्रवासके पश्चात् अत्यन्त स्पष्टरूपमें जो सम्भोग सम्पन्न होता है, उसे 'समृद्धिमान' कहते हैं। दर्शन, स्पर्शन, कथन, पथरोध, वन-विहार, जलकेलि, वंशीचोरी, नौकाखेला, लुकाछिपी-लीला, मधुपान आदि सम्भोगके अनन्त-विलास हैं।

जिन्होंने व्याकरणका अध्ययन नहीं किया है, किन्तु श्रीहरि भजन-परायण हैं, उनके लिए यह उज्ज्वलनीलमणिकिरण पथ-प्रदर्शक है।

इति उज्ज्वलनीलमणिकिरण 'किरण-किञ्जल्क-वृत्ति'
नामक भावानुवाद
समाप्त॥

स्वप्नविलासामृताष्टकम्

(श्रील-विश्वनाथ-चक्रवर्ति-ठक्कुर-विरचितम्)

प्रिय! स्वप्ने दृष्टा सरिदिनसुवेवाब्र पुलिनं
यथा वृन्दारणये नटनपटवस्तत्र वहवः।
मृदंगाद्यं वाद्यं विविधमिह कश्चिदिद्वजमणिः
स विद्युद्गौराङ्गः क्षित्तपति जगतीं प्रेमजलधौ॥१॥

(पृष्ठ भूमि—स्वयं भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभुके अन्तरंग परिकर श्रीलस्वरूपदामोदर गोस्वामीने जिस प्रकारसे स्वरचित "राधाकृष्णप्रणय-विकृतिह्लादिनीशक्तिरस्मात्।" श्लोक (कड़चे) में श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुके अवतार और उनकी लीलाओंका वर्णन बड़े ही निगूढ़रूपसे किया है और उसमें उन्होंने सात्त्वत शास्त्रोंके अभ्रान्त सार सिद्धान्तोंका प्रकाश किया है; वैसे ही गौड़ीय वैष्णवाचार्यकुल मुकुटमणि महामहोपाध्याय श्रीश्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने रसराजमहाभाव स्वरूप श्रीश्रीराधाकृष्ण मिलित तनु अथवा राधाभाव-कान्ति सुवलित श्रीकृष्णस्वरूप श्रीचैतन्य महाप्रभुके अतिशय गूढ़ावतारका वर्णन करते हुए श्रीश्रीस्वप्नविलासामृताष्टकम्की रचना की है। इस अष्टकमें उन्होंने श्रीश्रीराधाकृष्ण एवं श्रीगौरांग महाप्रभु—इन दोनों स्वरूपोंको ही युगपत् नित्य प्रमाणित किया है।

श्रील स्वरूपदामोदर गोस्वामीने अपने उपरोक्त कड़चेमें यह सात्त्वत सिद्धान्त प्रकाशित किया है कि श्रीमती राधिका

कृष्णके प्रणयका विकार और ह्लादिनी शक्ति-स्वरूपा हैं। शक्ति और शक्तिमान अभिन्न होनेके कारण श्रीराधा और श्रीकृष्ण दोनों ही अभिन्न-स्वरूप-एकात्मा हैं। फिर भी लीला-विलासके आस्वादनके लिए ये दोनों राधा और कृष्ण—इन दो स्वरूपोंमें नित्य ही विराजमान रहते हैं। अब वही श्रीराधाकृष्ण दोनों एक होकर श्रीचैतन्य महाप्रभुके रूपमें प्रकटित हुए हैं। उन राधाभाव एवं कान्तिसे देदीप्यमान श्रीकृष्णरूप श्रीचैतन्य देवको मैं पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ।

यहाँ यह सन्देह हो सकता है कि श्रीराधाकृष्ण पहले एकात्मा होनेपर भी देह-भेदसे दो स्वरूपोंमें प्रकटित हुए हैं, ऐसा होनेसे वे पहले एक थे और वह देह यदि कृष्ण-स्वरूप ही है, तब उसमें राधाजी नहीं हैं। साधारण लोकदृष्टिसे ऐसा सन्देह होने पर भी अप्राकृत तत्त्वके सम्बन्धमें ऐसा सन्देह नहीं उठ सकता है। अप्राकृत सच्चिदानन्दमय श्रीकृष्णमें परस्पर विविध प्रकारके विरोधी भावोंका सामञ्जस्य सम्भव है। इसलिए एक ही सच्चिदानन्द-स्वरूप दो स्वरूपोंमें प्रकाशित होकर नित्य-लीला-विलासका रसास्वादन करते हैं। इसके द्वारा यह ध्वनित होता है कि दोनोंका वह स्वरूप स्वभावसिद्ध एवं नित्य है। पुनः यदि यह कहते हैं कि राधाकृष्ण दोनों एक होकर अब श्रीचैतन्य महाप्रभुके रूपमें प्रकट हुए हैं, तो पहलेकी भाँति ऐसी आशङ्का हो सकती है कि अब श्रीचैतन्य महाप्रभुके रूपमें प्रकटित हैं। इससे पूर्व श्रीचैतन्य देव नहीं थे अथवा एकात्मा रूपमें पहले श्रीचैतन्य देव ही प्रकट थे, तब श्रीराधाकृष्ण पीछेसे प्रकटित हुए हैं, पहले वे नहीं थे—ऐसी नाना प्रकारकी शंकाएँ उठ सकती हैं, किन्तु महावराह पुराणमें

भगवान्‌के सभी देहों, स्वरूपोंको नित्य, शाश्वत, परमानन्द-स्वरूप तथा ज्ञान मात्र बतलाया गया है। उन शरीरों या स्वरूपोंकी प्राकृत भौतिक देहकी भाँति उत्पत्ति और विनाश नहीं है—

सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः।
हानोपादानरहिता नैव प्रकृतिजा क्वचित्।
परमानन्दसन्दोहाः ज्ञानमात्राश्च सर्वतः।

इस प्रमाणके द्वारा सभी भगवद्-स्वरूपोंका नित्यत्व स्थिर हुआ। कौन पहले और कौन पीछे तथा कौन स्वरूप नित्य और अनित्य है यह आशङ्का भी दूर हुई। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने उक्त सिद्धान्तोंको और भी दृढ़ करनेके लिए इस अष्टककी रचनाकी है।)

एक दिवस निशान्तके समय श्रीमती राधिकाजीने श्रीकृष्णसे कहा—प्रियतम! आज मैंने एक स्वप्न देखा है। क्या देखती हूँ कि किसी जगह श्रीयमुना जैसी एक नदी है, अर्थात् जिस प्रकार यह यमुना वृन्दावनको चारों ओरसे घेरे हुए हैं, उसी प्रकार वह नदी भी उस स्थानको चारों ओरसे घेरे हुए हैं। इस वृन्दावनमें जैसे पुलिन (पानीके भीतरसे हालकी निकली भूमि) हैं, ठीक उसी प्रकारके पुलिन वहाँ पर भी है; इस वृन्दावनमें जैसे अधिकांश लोग नृत्य-कलामें पारदर्शी हैं, वहाँ भी यही बात देखी। यहाँ जैसे मृदंग आदि वाद्ययंत्र हैं, वहाँ भी ठीक इसी प्रकारके वाद्ययंत्र थे। यहाँ पर जैसे तुम और मैं हूँ, वहाँ पर भी इसी प्रकार एक अपूर्व सुन्दर किशोर द्विजमणिको देखा। ऐसा जान पड़ता था कि बिजलीकी तरह गौर-कान्तिसे युक्त गौरांग विप्रवर इस ब्रह्माण्डको प्रेम-समुद्रमें सराबोर कर रहे हैं।

यहाँ ऐसा देखा जा रहा है कि लीला-विशिष्ट श्रीश्रीराधाकृष्णके द्वारा लीला-विशिष्ट श्रीचैतन्यमहाप्रभु दृष्टिगोचर हो रहे हैं। इसलिए श्रीचैतन्यमहाप्रभुके अवतारके पूर्व श्रीराधाकृष्णकी लीलाके समय भी श्रीचैतन्य देव विराजमान हैं। अतः श्रीभगवान्‌के सभी अवतार और सभी लीलाएँ नित्य हैं। इसके द्वारा सिद्ध होता है कि श्रीश्रीराधाकृष्ण एवं श्रीराधिकाके भाव और कान्तिसे देदीप्यमान श्रीचैतन्य देव—ये दोनों ही स्वरूप नित्य हैं॥१॥

कदाचित् कृष्णेति प्रलपति रूदन कर्हिचिदसौ
क्व राधे! हा हेति श्वसिति पतति प्रोज्झति धृतिम्।
नटत्युल्लासेन क्वचिदपि गणैः स्वैः प्रणयिभि-
स्तृणादि ब्रह्मान्तं जगदतितरां रोदयति सः॥२॥

वे गौरांग सुन्दर कभी रोते-रोते हा कृष्ण! हा कृष्ण! उच्चारण कर, बड़े करुण स्वरसे विलाप कर रहे हैं। दोनों नेत्रोंसे निरन्तर अश्रुधारा प्रवाहित हो रही है, गला रुद्ध हो रहा है। 'हा राधे! तुम कहाँ हो?' कह कर दीर्घ निःश्वास छोड़ रहे हैं, कभी पृथ्वी पर पछाड़ खाते हैं, कभी बड़े अधीर हो पड़ते हैं, कभी आनन्दके साथ नृत्य करते हैं, तो कभी अपने प्रणयीजनों (प्रियजनों) के निकट प्रलाप करते हैं, अचेतन हो पड़ते हैं। अपने इस आचरणसे वे तृण आदि ब्रह्मलोक तक सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंको अत्यन्त क्रन्दन करा रहे हैं॥२॥

ततो बुद्धिर्भ्रान्ता मम समजनि प्रक्ष्य किमहो!
भवेत् सोऽयं कान्तः किमयमहमेवास्मि न परः।
अहत् क्व प्रेयान्मम स किल चेत् क्वाहमिति
व्ये भ्रमो भूयो भूयानभवदथ निद्रां गतवती॥३॥

इस विचित्र व्यापारको देखकर मेरी बुद्धि भ्रान्त हो गयी। उनको हे राधे! तुम कहाँ हो; इस प्रकारसे अपना नाम लेते देखकर मैं सोचने लगी कि यह पुरुष मेरे प्राण-वल्लभ श्रीकृष्ण तो नहीं हैं? यदि यह सत्य है, तो मैं कहाँ हूँ? इसी प्रकार 'हे कृष्ण! तुम कहाँ हो?' इत्यादि प्रलापोंको सुनकर पुनः सोचने लगी कि यह विप्र मैं ही हूँ, वह कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है। यदि मैं ही यह विप्र हूँ, तब मेरे प्रियतम माधव कहाँ हैं? इस प्रकार मुझे बार-बार भ्रम होने लगा; अनन्तर मेरी आँख लग गयीं॥३॥

प्रिये! दृष्ट्वा तास्ताः कुतुकिनि! मया दर्शितचरी
रमेशाद्या मुर्त्तीर्न खलु भवती विस्मयमगात्।
कथं विप्रो विस्मापयितुमशकत् त्वां तव कथं
तथा भ्रान्तिं धत्ते स हि भवति को हन्त! किमिदम्॥४॥

इस प्रकार श्रीमती राधिकाका स्वप्न-वृत्तान्त सुनकर श्रीकृष्णने कहा—प्रिये! मैंने तुमको अनन्तशायी नारायण आदि अपनी अनेक मूर्त्तियोंका दर्शन कराया है और उनको देखकर तुम कभी भी विस्मित नहीं हुईं, परन्तु अब उस ब्राह्मणको

देखकर तुम क्यों विस्मित हो रही हो? कुतुकिनी! तुम्हारा चित्त क्यों भ्रान्त हो रहा है? बड़े आश्चर्यकी बात है। वह विप्र कौन है?॥४॥

(तात्पर्य यह है कि कृष्णकी उक्ति एक पूर्व घटनाको इंगित कर रही है। एक दिनकी बात है—श्रीमती राधा और श्रीकृष्ण वृन्दावनके एक सघन कुंजमें बैठकर प्रेमालाप कर रहे थे। बात ही बातमें श्रीमतीजी श्रीकृष्णसे बोलीं—माधव! मुझे नारायण मूर्त्ति और रघुनाथ-मूर्त्ति देखनेकी बड़ी लालसा हो रही है। अतः तुम इन दोनों रूपोंको अभी दिखलाओ। प्रियाजीके इस प्रकार कौतुकपूर्ण वचनोंको सुनकर श्रीकृष्णने उन्हें उन मूर्त्तियोंका दर्शन कराया था। व्रजमें वह शेषशायी नारायणमूर्त्ति आज भी विद्यमान है। दूसरे एक दिन श्रीमती राधिकाजी परस्पर वार्त्तालापके प्रसंगमें पुनः बोलीं—'प्रियतम! स्त्रियाँ पुरुषोंके मनोभावोंको लक्ष्यकर उनके हृदयगत सुखानुभूतिको जान लेनेमें जैसे पटु होती हैं, वैसे पुरुष स्त्रियोंके मनके भावोंको नहीं समझ सकते।' कृष्णने उत्तर दिया—'प्रिये! बात तो ठीक है, परन्तु मेरे सम्बन्धमें यह बात नहीं है। मैं एक दूसरी मूर्त्तिमें उसे अनुभव करता हूँ।' श्रीमतीने कहा—'तुम झूठ बोल रहे हो।' कृष्णने दृढ़ताके साथ उत्तर दिया—मैं कदापि झूठ नहीं बोलता।' श्रीमती राधिकाकी बात सुनकर श्रीकृष्णने स्वप्नमें उनको अपने श्रीगौरांग स्वरूपका दर्शन कराया था॥४॥

इति प्रोच्य प्रेष्ठां क्षाणमथ परामृष्य रमणो
हसन्नाकुतज्ञं व्यनुददथ तं कौस्तुभमणिम्।
तथा दीप्तं तेने सपदि स यथा दृष्टमिव त
द्विलासानां सक्ष्यं स्थिर चरगणैः सर्वमभवत्॥५॥

श्रीकृष्णने श्रीराधिकासे पूर्वोक्त परिहासमय वचनोंको कहकर क्षण भर चिन्ताकर मुस्कराते हुए अपनी कौस्तुभ मणिका संचालन किया। कौस्तुभ मणिका संचालन करना था कि क्षण भरमें वह मणि इस प्रकार दमकने लगी कि श्रीमतीजीने स्वप्नावस्थामें जैसा दर्शन किया था, ठीक उसी प्रकारसे स्थावर-जङ्गमके साथ उनके विलासके सारे चिह्न दीख पड़ने लगे॥५॥

विभाव्याथ प्रोचे प्रियतम! मया ज्ञातमखिलं
तवाकूतं यत्त्वं स्मितमतनुथास्तत्त्वमसि सः।
स्फुटं यन्नावादीर्यदभिमतिरत्राप्यहमिति
स्फुरन्ती मेतस्मादहमपि स एवेत्यनुमिमे॥६॥

उस समय श्रीराधिकाजीने प्रदीप्त कौस्तुभ मणिके प्रभावसे जाग्रत-अवस्थामें भी उस दृश्यको देखा, जिसे उन्होंने स्वप्नावस्थामें देखा था। ऐसा देखकर वे सोचने लगीं—'अहा! मेरे प्राणनाथ इतने चतुर हैं जिसकी सीमा नहीं।' पश्चात् सोच विचार कर बोलीं—प्रियतम! मैं तुम्हारा अभिप्राय समझ गयी। मैंने स्वप्नमे जिस विप्रवरको देखा है, वे प्रियवर गौरांग साक्षात् तुम ही हो; क्योंकि तुम्हारे ईषत् हास्यसे यह प्रकाश हो गया है कि वे

गौरांग तुम्हीं हो—तुममें ऐसा अभिमान है। परन्तु तुमने मेरे निकट स्पष्टरूपसे कुछ भी प्रकाशित नहीं किया है, इसलिए मेरे शरीरमें भी ऐसा अभिमान स्फुरित हो रहा है कि मैं भी गौरांग हूँ। दोनोंका इस प्रकार अभिमान होनेके कारण ऐसा लगता है कि तुम और मैं दोनों मिलकर ही गौरांग रूप हुए हैं॥६॥

यदप्यस्माकीनं रतिपदमिदं कौस्तुभमणिं
प्रदीप्यात्रैवादीदृशदखिलजीवानपि भवान्।
स्वशक्त्याविर्भूय स्वमखिलविलासं प्रतिजनं
निगद्य प्रेमाब्धौ पुनरपि तदाधास्यसि जगत्॥७॥

प्रियतम! तुमने इस कौस्तुभ मणिको प्रदीप्तकर इस मणिमें ही हमलोगोंके रतिपद अर्थात् रतिके स्थानको बार-बार दिखलाया है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम स्वयं ही अपनी शक्तियोंके साथ आविर्भूत होकर अपनेको और अपनी निखिल लीलाको प्रत्येक जीवके निकट व्यक्तकर पुनः इस चराचर जगत्को प्रेम-सागरमें निमग्न करोगे॥७॥

यदुक्तं गर्गेण व्रजपतिसमक्षं श्रुतिविदा
भवेत पितो वर्णः क्वचिदपि तवैतन्न हि मृषा।
अतः स्वप्नः सत्यो मम च न तदा भ्रान्तिरभव
त्त्वमेवासौ साक्षादिह यदनुभूतोऽसि तदृतम्॥८॥

श्रीमतीजी पुनः बोलीं—प्रियतम! मैंने सुना है कि तुम्हारे नामकरणके समय वेदज्ञ गर्गाचार्य महाशयने श्रीव्रजपति नन्द

महाराजको बतलाया था कि हे नन्द! तुम्हारे पुत्रने कभी शुक्लवर्ण और रक्तवर्ण धारण किया था; अब वही कृष्णवर्ण हुआ है तथा फिर किसी युगमें पीतवर्ण भी धारण करेगा। मेरी यह बात कभी झूठी नहीं हो सकती। अतएव मेरा स्वप्न सत्य है—इस विषयमें मुझे कोई भ्रम (संदेह) नहीं है। इस गौरांगमें साक्षात् तुम ही अनुभूत हो रहे हो, यह भी सत्य है॥८॥

पिबेद् यस्य स्वप्नामृतामिदमहो! चित्तमधुपः
स सन्देहस्वप्नात्त्वरितमिह जागर्त्ति सुमतिः।
अवाप्तश्चैतन्यं प्रणयजलधौ खेलति यतो
भृशं धत्ते तस्मिन्नतुलकरुणां कुञ्जनृपतिः॥९॥

जिनका चित्त-भ्रमर इस विचित्र स्वप्नामृत अर्थात् स्वप्न-विलासामृतका पान करेगा, वे बुद्धिमान व्यक्ति शीघ्र ही इस संदेह-स्वप्नसे जग जायेंगे। अर्थात् नन्दनन्दन कृष्ण ही श्रीशचीनन्दन गौर हैं या नहीं—इस सन्देह-निद्रासे जग जायेंगे और श्रीचैतन्यको प्राप्तकर प्रेम-सागरमें विहार करेंगे; क्योंकि वे कुञ्जविहारी श्रीकृष्ण उनके प्रति असीम करुणामय होते हैं अर्थात् वे श्रीकृष्णके अत्यन्त प्रियपात्र हो जाते हैं॥९॥